वितस्ता

सम्पादक
डा. मुहम्मद अयूब खान

सम्पादक

डा. मुहम्मद अयूब खान

विषय सूची

बीसवीं शताब्दी की हिन्दी कविता की दार्शनिक चेतना का धारावाहिक अध्ययन

—डॉ. मुहम्मद अयूब खान, डी. लिट्.

द्विवेदी युगीन दार्शनिक चेतना—धारा भारतेन्दु काल से लेकर द्विवेदी युगीन कवियों में एक सामान्य तथ्य यह रहा है कि वे पुनरुत्थानवादी आधार पर चिंतन करते दिखाई देते हैं। इस पुनरुत्थानवादी चेतना के पीछे राजाराम मोहनराय, केशवचन्द्र सेन, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द की विचारधारायें परिलक्षित होती हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर का भी प्रभाव बहुत दूर तक दिखाई देता है। श्रीधर पाठक, रायकृष्णदास, रामनरेश त्रिपाठी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बदरीनाथ भट्ट, मुकुटधर पाण्डेय, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों पर यह प्रभाव देखा जा सकता है। श्रीधर पाठक के काव्य में मानवीय भावनाओं के आरोप के साथ-साथ प्रकृति में रहस्य-भावना का दर्शन बहुत ही हृदयग्राही प्रतीत होता है। वे प्रकृति के क्षेत्र में सजीवता ही नहीं अनुभव करते अपितु एक दिव्य वीणा की स्पष्ट झंकार भी सुनते हैं। प्रकृति के शांत वातावरण में गूँजती हुई सुमंजु वीणा की कल्पना बहुत ही स्वाभाविक रहस्यवाद की सृष्टि कर देती है:—

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमंजु वीणा बजा रही है
सुरों के संगीत की सी कैसी सुरीली गुंजार आ रही है
भरे गगन में हैं जितने तारे, हुए हैं मदमस्त गत पै सारे समस्त ब्रह्माण्ड
भर को मानो उँगलियों पर नचा रही है।[1]

इस स्वर्गीय वीणा से मोहिनी माया की ध्वनि निकलती आभासित होती है

1. श्रीधर पाठक—कविता कौमुदी दूसरा भाग पृ. 19-120

क्योंकि यही माया समस्त ब्रह्माण्ड भर को उंगलियों पर नचाने की शक्ति रखती है। यह संकेत शांकर वेदान्त के आधार पर है। यही झंकार सम्पूर्ण विश्व को अनेक बानक बनाती हुई आभासित होती है–

कभी नई तान प्रेममय है, कभी प्रकोपन, कभी विनय है
दया है, दाक्षिण्य का उदय है अनेकों बानक बना रही है।[2]

पाठक जी के काव्य में वेदान्त दर्शन का बहुत सुन्दर उपयोग मिलता है। वे विशिष्टाद्वैतवादी दार्शनिक चेतना के समान ही कह उठते हैं–

कहो न प्यारे मुझसे ऐसा–झूठा है यह सब संसार।
थोथा झगड़ा, जी का रगड़ा, केवल दुख का हेतु अपार।।
माना हमने वस्तु जगत को, नाशवान् हैं निस्सन्देह
फिर भी तो छोड़ा नहीं जाता पल भर को भी उनसे नेह।[3]

वे ईश्वर को जगत् में परिव्याप्त मानते हैं क्योंकि वस्तुमात्र में उसी की सत्ता है। सृष्टि की सुन्दरता का रचयिता वही ईश्वर है–

सारा सांसारिक सुख पाकर ईश्वर को पहचानो हौ।
उसकी विद्यमानता सत्ता वस्तुमात्र में जानो हौ।
ध्यान लगा के जो देखो तुम सृष्टी की सुधराई को।
बात बात में पाओगे उस ईश्वर की चतुराई को।[4]

पाठक जी के पश्चात् गीतांजलि के आधार पर कवियों ने रहस्यभावना को अभिव्यक्त किया है। रायकृष्ण दास ने गीतांजलि के आधार पर ही बड़े सुन्दर रहस्यवादी गीतों की रचना की है। आध्यात्मिक प्रेम का स्वरूप नीचे की पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ है–

क्या यह न्योता तेरा है, प्रेमनियन्त्रण मेरा है।
इसकी अवहेला क्या मुझसे हो सकती है भला कभी

2. श्रीधर पाठक–कविता कौमुदी दूसरा भाग पृ. 120
3. श्रीधर पाठक–जगत सचाई सार पृ. 1
4. वही पृ. 2

इच्छा के गिरि गिरागिरा कर निज मार्ग प्रशस्त किया
प्राणेश्वर के पद-पद्मों में पहुंचा बस मैं अभी अभी।[5]

मुकुटधर पाण्डेय के काव्य में अद्वैत दर्शन का रूप मिलता है। जीवात्मा परमात्मा के साथ अंग-अंगी के सम्बन्ध से जुड़ी हुई है लेकिन जब वह परमात्मा में लय होती है तो अद्वेत रूप होता है। इसी दार्शनिक तथ्य को वे रहस्यवादी शैली में प्रकट करते हैं–

एक दिन की बात है, हे पाठको, नोन की जब एक छोटी सी डली।
सिन्धु के जलपूर्ण दुर्गम गर्भ की थाह लेने के लिए घर से चली।
किंतु थोड़ी दूर भी पहुँची न थी और उसमें वह स्वयं ही घुल गई।
खो सकल निजरूप गुण ही को हरे। हो गई उसमें स्वयं ही लापता।[6]

कबीर की लाली[7] जैसा रूप उन्होंने भी सर्वव्यापक रूप में आभासित किया है। यहाँ अज्ञात की जिज्ञासा और आभास रहस्यवादी तत्व के रूप में ही है–

लाली यह किसके अंधेरों की लख जिसे मलिन नक्षत्र हीर।
विकसित सर में किंजलक जाल, शोभित उन पर नीहार माल।
किस सदय बन्धु की आँखों से है टपक रहा यह प्रेम नीर।
अस्फुटित मल्लिका पुंज कमनीय माधवी कुंजकुंज।[8]

बदरीनाथ भट्ट द्विवेदी युगीन रहस्यवादी कवि माने जाते हैं। लेकिन उनमें दार्शनिकता भी मिलती है। कहीं कहीं तो वे अद्वैत वेदान्त के व्याख्याकार प्रतीत होते हैं–

जो महत् तत्व बन सब में आप समाया
खुद बनकर जिसने है ब्रह्माण्ड बनाया।
वह धारणा करके पंचतत्व तन आया
खुद चित्रकार मानों स्वचित्र बन आया।[9]

5. रामकृष्णदास–शुभकाल कविता सरस्वती सितम्बर 1917
6. मुकुटधर पांडेय–सरस्वती जनवरी 1917
7. लाल मेरे लाल की जित देखो नित लाल
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल। कबीर
8. मुकुटधर पांडेय–कवि भारती पृ. 270
9. बदरीनाथ भट्ट–सरस्वती अप्रैल 1917

निश्चय ही यहाँ उनकी काव्य शैली निकृष्ट कोटि की है और केवल इतिवृत्तात्मक रूप में ही दिखाई देती है। लेकिन अपेक्षाकृत उनके रहस्यवादी रूप में काव्य तत्व फिर भी उच्चतर रूप में दिखाई देता है–

कहूँ क्या ? भगवान् हूँ हैरान।
मिटी जा रही अपने और पराये की पहचान।
सभी रंग बदरंग हुए बन रहे एक ही रंग।
कैसे कहूँ कि है यह कैसा हुई अहो मतिभंग।[10]

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी तो शुद्ध रूप में रहस्यवादी कवि हैं। उनके मन में जिज्ञासा का भाव इस प्रकार उठता है–

अन्धकार में दीप जलाकर किसकी खोज किया करते हो ?
तुम खद्योत क्षुद्र हो तब फिर क्यों तुम ऐसा दम भरते हो ?
पवन अहर्निश शान्त नहीं वह निश्चिन्त सदा बहती है।
नभ में ये नक्षत्र आज तक घूम रहे हैं उनके कारण।
उसका पता कहाँ है किसको होगा यह रहस्य उद्घाटन।
हम हैं क्षुद्र जानते हैं हम जग में हम को सब हँसते हैं।[11]

इसी प्रकार कवि उस परम तत्व के अधिवास की खोज में भटकता फिरा और उसे न पाकर उदास हो गया। तब हार कर वह प्रश्न करता है जिसमें उसके भक्ति-रहस्यवाद की झलक है–

कहां है नाथ तुम्हारा वास ?
खोज फिरा सब देख लिया अब मैं हो गया उदास।
आती है सन्ध्या तब उनका फिर सजता है साज।
नक्षत्रों के साथ गगन में आते हैं द्विजराज।
किसी उपासना में सब हो जाते हैं निस्तब्ध।
निश्चल होती प्रकृति, शान्ति होती सबको उपलब्ध।[12]

10. वही–सरस्वती मई 1917
11. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी–रहस्य-सरस्वती मार्च 1920
12. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी–अज्ञात कविता-सरस्वती मार्च 1920

इस युग के सबसे प्रमुख रहस्यवादी तथा दार्शनिक कवि पं. रामनरेश त्रिपाठी हो गये हैं। उनमें रहस्यवाद के विभिन्न रूप और स्तर मिलते हैं। राष्ट्रीय रहस्यवाद शिशु रहस्यवाद और प्रकृति रहस्यवाद के रूप तो बहुत ही विशद बन गये हैं। एक अज्ञात चेतना प्रकृति को अनुप्रमाणित किये हुए है–

जग की आँखों से ओझलकर बरबस मेरी दृष्टि उठाकर,
झिलमिल करते हुए गगन में तारों के पथ पर पहुँचाकर,
करता है संकेत देखने को किसका सौन्दर्य मनोरम?
आकर के चुपचाप कहीं से यह संध्या का तमअतिप्रियतम।[13]

उनकी 'मानसी' काव्य-कृति में राष्ट्रीय रहस्यवाद, भक्ति रहस्यवाद, प्रकृति रहस्यवाद और शिशु रहस्यवाद के अनेक उदाहरण मिलते हैं। एक साथ ही भक्ति, प्रकृति-रहस्यवाद और शिशु रहस्यवाद की अभिव्यंजना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

हे मेरे प्रभु। व्याप्त हो रही है तेरी छवि त्रिभुवन में।
तेरी ही छवि का विकास है कवि की वाणी में मन में।
माता के निःस्वार्थ नेह में प्रेममयी की माया में
बालक के कोमल अधरों मधुर हास्य की छाया में।[14]

उनके रहस्यवादी गीतों में अव्यक्त के प्रति औत्सुक्त तथा कौतूहल की भावना अभिव्यक्त हुई है–

वह कौन सी है छवि, खोजना जिसे है रवि?
प्रतिदिन भेजदल, अमित किरन का।
वह कौन सा है गान जिससे लगाये कान
गिरि चुपचाप खड़े ज्ञान भूल तन का।[15]

मोहन लाल महतो 'वियोगी' के 'निर्माल्य', 'एकतारा' और 'कल्पना' नामक कविता-संग्रहों में अनेक दर्शन-परक तथा रहस्यात्मक रचनाएँ संकलित हैं। वे रहस्यवादी रचनाओं में दार्शनिक चेतना की अभिव्यक्ति करने में बड़े कुशल

13. रामनरेश त्रिपाठी–स्वप्न 2/19
14. रामनरेश त्रिपाठी–मानसी (तेरी छवि कविता) पृ 4
15. रामनरेश त्रिपाठी–मानसी पृ. 11

कलाकार हैं। जगत् में अनेक–रूपता के पीछे अद्वैत तत्त्व को रहस्यवादी शैली में सिद्ध करते हुए कहते है–

जिस प्रकार शतशत सरिताएँ सागर में मिल जाती हैं,
उस असीम से भिन्न नहीं वे फिर अपने को पाती हैं।
उसी तरह तेरी महानता में अपने को कर तल्लीन,
कर देंगे अस्थिरता को हम निश्चय हीन अस्तित्वविहीन।[16]

उसी अव्यक्त की छवि अर्थात् माया के सम्बन्ध में वे 'चित्रपट से संलाप' नामक कविता में अपनी भावना इस प्रकार प्रकट करते हैं–

बोल-बोल क्यों मौन स्वप्न सी, छाया सी सुषमा सी,
कवि की सुखद कल्पना सी, मुस्कान और उपमा सी,
सुरसरि की तरंग माला पर नृत्यमान शशिकर सी।
जीवन की गति सी नीरव रोदन सी अचल अधर सी।[17]

वैसे भारतेन्दु काल के प्रसिद्ध कनि देवी प्रसाद !पूर्ण ने ब्रजभाषा में दार्शनिक रूप का प्रतिपादन एक दार्शनिक के रूप में किया था। वे परमात्मा को अखिल विश्व में देखते हैं पृथ्वी आकाश, जल, वायु और अग्नि से मानव शरीर की उत्पत्ति हुई है। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र उसी की ज्योति से अलोकित हैं–

पावक समीर, नीर, भूतल, आकासमांहि
        भानु में छपाकर में वृन्द तारन में,
जगत चराचर में रावरी जगत जोति
        पूरन मुनीस वृन्द मानस अगारन में।[18]

उसकी खोज करना व्यर्थ है। वह आत्मा रूप में शरीर के अन्दर ही व्याप्त है। वह परम तत्व सच्चिदानन्द है। ब्रहम में जगत् और जगत् में बह्म समाया हुआ है–

16. मोहनलाल महतो वियोगी–एक तारा (एकान्त) पृ. 29
17. मोहनलाल महतो 'वियोगी'–एकतारा (चित्रपट से संलाप) पृ. 50
18. देवीप्रसाद पूर्ण–पूर्ण संग्रह पृ. 120

खोजत हो जाको घर बाहर, अखंड सो तो,
आत्मा तुम्हारे घर ही में राजमान है।
सच्चित स्वरूप बारो पूरन परम प्यारो,
सोई है जहानमाहि ताही में जहान है।[19]

इन्हीं भावों का प्रभाव अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पर परिलक्षित होता है। हरिऔध जी ने प्रकृति में ही परम तत्व के दर्शन किये हैं। वे प्रकृति को उसी की लीला से युक्त मानते हैं अतः वह पवित्रता में पगी हुई है। इन्हीं विशेषताओं के कारण प्रकृति पूज्या, मान्या और ज्ञानगर्भा तथा मनोज्ञा होने से हृदय के लिए आनन्दायिनी है–

प्यारी जगतपति की नित्य लीला मयी है
स्नेहसिक्त परम मधुरा पूतता में पगी है
ऊँची न्यारी सरल सरसा ज्ञानगर्भा मनोज्ञा
पूज्या मान्या हृदयतल की रंजिनी उज्जवला है।[20]

प्रकृति का सौन्दर्य उनके मन में रहस्यमयी जिज्ञासा उत्पन्न करता है–

(१) ले बहुरग वलाहक व्योम को
छींट बनाता है कौन सा छीपी ?[21]

(२) बनाता है क्यों भू को भव्य
कौन सा भव का भाव विलास ?[22]

इस जड़-चेतनमय प्रकृति में वे किसी अव्यक्त चेतना का अनुभव करते हैं। वही ज्योति सूर्य, चन्द्र नक्षत्र और पंच तत्वों में व्यापक है–

ताराओं में तिमिरहर में वहिन में और शशी में
पाई जाती परम रुचिया ज्योतियाँ हैं उसी कीं।
पृथ्वी पानी, पवन नभ में पादपों में खगों में,
देखी जाती प्रथित प्रभुता विश्व में व्याप्त ही है।[23]

19. वही
20. अयोध्या सिंह उपाध्याय–प्रिय प्रवास सर्ग 16/112
21. अयोध्या सिंह उपाध्याय कल्पलता पृ. 16
22. वही
23. प्रिय प्रवास सर्ग 16/120

'प्रेम ही परमेश्वर है' का पूर्ण रूप उन्होंने प्रियप्रवास महाकाव्य में चरितार्थ किया है। वह विश्वात्मा प्रत्येक जीव में परिव्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी, नदियाँ, लताएँ नाना प्रकार के वृक्ष उसी विश्वात्मा के विभिन्न रूप हैं। परम प्रभु का स्वरूप भी यही है–

विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो हैं उसी के
सारे प्राणी सरिगिरि लता बेलियाँ वृक्ष नाना।[24]

प्रियवास के कृष्ण विश्व-प्रियतम हैं। राधा के भगवान् कृष्णमय और कृष्ण ही भगवान् हो जाते हैं–

पाती हूँ विश्व प्रियतम में विश्व में प्राण प्यारा।
ऐसे मैंने जगत पति को श्याम में है विलोका।[25]

मैथिली शरण गुप्त मुख्य रूप से भक्त-कवि या राष्ट्रीय कवि हैं अतः उनके काव्य में इन्हीं से सम्बन्धी विषय की प्रधानता है। वे अपने शरीर में जन्मभूमि की ही प्रतिच्छाया अनुभव करते हैं अतः राष्ट्रीय-रहस्यवाद मिलता है–

तेरा स्वच्छ समीर हमारे श्वास में

मानस में जल और अनन्त उच्छवास में।[26]

देश की अधोगति की व्याकुल अनुभूति ने ही उनकी वाणी में चेतना भर दी है लेकिन अन्त में यही देश-प्रेम अपने संकुचित क्षेत्र का अतिक्रमण कर जाता है तथा विश्व-वेदना के रूप में अभिव्यक्त होता है। कवि प्रभु से भक्ति-विह्वल स्वर में प्रार्थना करता है–

कृपाकर करुणा पारावार नीरस संसार,
हो रहा है नीरस संसार,
बहा दे नवरस की वह धार,
कि धो दे जो वैषम्य विकार।[27]

24. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'–प्रिय प्रवास सर्ग 16/117
25. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध–प्रिय प्रवास सर्ग 16/112
26. मैथिलीशरण गुप्त–साकेत
27. मैथिलीशरण गुप्त–विश्व-वेदना

मैथिलीशरण गुप्त भक्ति-रहस्यवाद के प्रसिद्ध कवि माने जाते हैं। 'झंकार' कविता-संग्रह में उनके अनेक रहस्यमयी गीत हैं। 'विराट वीणा' की पंक्तियां देखिये :--

तुम्हारी वीणा है, अनमोल
हे विराट जिसके दो तूंबे हैं भूगोल-खगोल
इसे बजाते हो तुम जब लौं, नाचेंगे हम सब भी तब लौं ?[28]
न कहो, कुछ कब लौं यह क्रीड़ा कल्लोल।

यहाँ भक्ति-रहस्यवाद से सम्बन्धी गीत भी संकलित हैं। ईश्वर की उपासना के अनेक मार्ग हैं अतः भोला भक्त कभी-कभी उलझन में पड़ जाता है–

तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किसमें होकर आऊँ मैं ?
सब द्वारों पर भीड़ मची है, कैसे भीतर आऊँ मैं ?[29]

कवि इस संसार में ईश्वर की मोहिनी की माधुरी देख रहा है तथा यह अनुभव कर रहा है कि संसार उसी पर मुग्ध होकर मिटा जा रहा है। यही तो माया शक्ति का प्रभाव है–

संसार कब से मुग्ध होकर मर रहा है। आह तेरी माधुरी।
कवि चित्रकार सुवर्ण रंजित कर रहा है। आह तेरी माधुरी।[30]

मैथिलीशरण गुप्त के समान ही उनके छोटे भाई सियाराम शरण गुप्त भक्ति रहस्यवाद के कवि हैं लेकिन उनके रहस्यवादी रूप में अपेक्षाकृत अधिक सौन्दर्य है। उनके गीत अभिव्यंजना-शैली के रूप में भी अपने अग्रज से उच्चस्तरीय हैं–

वे जाने न जाने किस द्वार से, कौन से प्रकार से,
मेरे गृह-कक्ष में, दुरतर-तिमिर-दुर्ग-दुर्गम-विपक्ष में
उज्जवल प्रभामयी एकाएक कोमल किरण एक आ गई।
बीच से अंधेरे के हुए दो टूक, विस्मय-विमुग्ध मूक
मेरा मन पा गया अनन्तधन।४

28. मैथिलीशरण गुप्त–झंकार (विराट वीणा) पृ. 1
29. मैथिलीशरण गुप्त–झंकार (स्वयमागत) पृ. 109
30. मैथिलीशरण गुप्त वही–माधुरी कविता पृ. 80
31. सियारामशरण गुप्त–विषाद (किरण) पृ. 12

जब प्राण उस अव्यकत में विलीन होते प्रतीत हों तो रहस्य भावना का रूप बड़ा ही महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि जहाँ भी दृष्टि पड़ती है वही नूतम रहस्य-सृष्टि प्राप्त करती है–आज पड़ती है जहाँ मेरी दृष्टि, पाती वहीं नूतन रहस्य-सृष्टि।

मेरे कान, सुनते हैं जो कुछ समस्त वह स्वीय गान
मेरे प्राण, जो कुछ हैं चारों ओर, जिसका न ओर छोर,
हो गये उसी में विलीयमान।[32]

इस प्रकार द्विवेदी युगीन रहस्यवादी काव्य की मूलाधार पृष्ठभूमि पुनरुत्थापनवादी भावना के अतिरिक्त रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि की आध्यात्मिक भावना सिद्ध होती है। इस युग की कविता में कहीं कहीं ही दार्शनिक रूपों का संदर्शन होता है अन्यथा सर्वत्र रहस्य भावना का ही साम्राज्य है। प्रायः यह रहस्यभावना प्रगीत के शिल्प पर ही प्रस्तुत की गई है। इतना अवश्य इसका महत्त्व है कि आगे १९२० के लगभग जो छायावादी रहस्य-भावना का पुष्ट रूपनिर्मित हुआ उसके विकास को एक निश्चित आधार इसी ने दिया है। छायावादी स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति को परम्परा देने वाली द्विवेदी युगीन यही रहस्यात्मक भावना है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इस युग का रहस्यवाद छायावादी रहस्यवाद का एक ठोस आधार है और यही कारण है कि सन १९३० के लगभग प्रसाद, निराला, पन्त और म्होदवी वर्मा के काव्य में यही धारा शक्तिशाली प्रवाह के रूप में प्रस्फुटित हुई है जिसने विश्वमानवता के आधार पर एक सार्वभौम सत्ता का एक विश्वव्यापी अश्वत्थ लहराया जिसकी शीतल छाया में 'घने प्रेमतरु तले' के समान व्यक्ति की तापित आत्मा को शान्ति मिली है और वहा नवीन विश्वासों की प्राण-वायु बही है। छायावाद युगीन दार्शनिक चेतना–छायावाद प्रमुख रूप से दार्शनिक चेतना से ही अनुप्रमाणित है। उसकी कला क़ा चित्र-पट भारतीय अद्वैतवादी दर्शनों से निर्मित है लेकिन कहीं कहीं पाश्चात्य दार्शनिक चेतना ने चित्रों में रंग भर दिया है। मुख्य चित्र का रूप रहस्यात्मक है जैसा कि 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में आचार्य शुक्ल जी ने निर्दिष्ट किया है[33] कि काव्य वस्तु की दृष्टि से छायावाद रहस्यवाद ही होता है और काव्य-शैली के व्यापक अर्थ में छायावाद एक काव्य-प्रणाली-विशेष है।

32. सियारामशरण गुप्त–पाथेय (आह्लाद) पृ. 24
33. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 583

डाक्टर नामवर सिंह[34] तथा आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने शुक्ल जी की इस मान्यता का खण्डन किया है और इन दोनों विद्वानों ने छायावाद को सम्पूर्ण रोमांटिसिज्म का वाचक माना है[35] अतः वह अभिव्यंजना की एक लाक्षणिक प्रणाली विशेष नहीं है। उसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्‌गम और स्वतंत्र दर्शन की उद्‌भावना हुई है। डा. नमेन्द्र जी के मतानुसार ''छायावाद मूलतः भारतीय अद्वैतवाद का ही प्रोद्‌भास है।''[36] वास्तव में छायावाद की वैचारिक पीठिका (जिसमें सामाजिक दार्शनिक और धार्मिक परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक्र जागरण का प्रमुख हाथ था) ने महत्वपूर्ण रूप से कवियों को अनुचिंतन प्रदान किया है। इस सांस्कृतिक नव जागरण के कई रूपों में से ब्रहम समाज प्रार्थना-समाज, आर्यसमाज, थियोसॉफिकल सोसायटी, रामकृष्णमिशन ने छायावाद को दार्शनिक परिसर प्रदान किया है तथा शिल्प के रूप में पाश्चात्य रोमांटिसिज़्म ने उसे एक कलात्मक सांचे में ढाल कर सौंदर्य प्रदान किया है। अबरहा यह प्रश्न कि छायावाद का प्रवर्तक कौन कवि है ? डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने अपने महत्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध 'कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन' में सबल प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि प्रसाद की प्रथम रहस्यवादी रचना 'खोलोद्वार' गुप्त जी की 'नक्षत्र-निपात' से पूर्व इन्दु में जवनरी सन् १९१४ में प्रकाशित हो चुकी थी अतः गुप्त जी की अपेक्षा प्रसाद जी ही छायावाद के प्रवर्तक हैं[37] क्योंकि शुक्ल जी ने गुप्त जी की उक्त कविता जो सरस्वती में जून १९१४ में प्रकाशित हुई थी के आधार पर उन्हें छायावाद का प्रवर्तक सिद्ध किया था।[38] सरस्वती में प्रकाशित रचनाओं के आधार पर तथा शुक्ल जी की उक्त मान्यता के आधार पर पंतजी ने 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' पुस्तक में यह कहा है– ''सामान्यतया छायावाद के प्रवर्तक होने की कीर्ति किरीट हमारे अग्रज प्रसाद जी के मस्तक पर रखा जाता है और हम भावना की दृष्टि से उसका आदर करते हैं पर तथ्य-विश्लेषण की दृष्टि से यह उचित नहीं लगता''[39] वास्तव में उन्हें उचित तो यही लगता है कि वे किसी

34. डा. नामवर सिंह–आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ पृ. 3
35. आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी–जयशंकर प्रसाद पृ. 25
36. डा. नगेन्द आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ पृ. 12
37. देखिये कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन–डा. द्वारिका प्रसाद सक्सेना पृ. 33
38. दोखिये–हिन्दी साहित्य आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 679
39. पंत–छायावाद पुनर्मूल्यांकन पृ. 36

प्रकार से कीर्ति-किरीट प्रसाद के मस्तक से खींचकर स्वयं पहन लें क्योंकि छोटा भाई यदि शरारत भी देता है तो क्षम्य ही है।

अब हमें छायावाद के प्रवर्तक प्रसाद की मान्यता पर भी सोचना चाहिए। उनके मतानुसार 'अद्वैत भावना पर आधारित 'अहं' का 'इदं' के साथ भावात्मक समन्वय रहस्यवाद है।[40] मानव और प्रसाद ने प्रकृति का शक्ति का रहस्यवाद माना है। उनके विचार में यह अद्वैत रहस्यवाद है। वे आगे कहते हैं– "यह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का 'इदं' से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।"[41]

पंत जी के मतानुसार "छायावाद कोई दर्शन विशेष तो नहीं दे सका–क्योंकि निर्माण युग में चेतना ही मुख्य होती है, दर्शन विकास-युग की परिणति है–पर वह अज्ञात रूप से औपनिषदिक दृष्टि को मध्ययुगीन संतों के रहस्यवादी पारलौकिक कुहासों से मुक्त कर सका।"[42] आगे वे अपने विषय में अन्तर्विरोध भी प्रस्तुत करते हैं– "वास्तव में दर्शनज्ञ या दर्शनों से प्रभावित कवि तो प्रसाद जी तथा निराला जी रहे हैं...........। मैंने तो जो कुछ भी वैचारिक या बौद्धिक तत्त्व ग्रहण किये हैं वे भावनात्मक दृष्टि से, क्योंकि मेरी भावना अन्तर्मुखी न होकर, जीवनोन्मुखी या वस्तून्मुखी रही है।"[43] इसी विचार के बिल्कुल विरुद्ध उनके निम्नलिखित वक्तव्य विचारणीय हैं–

(१) "मैं यूरोप का जीवन-सौष्ठव तथा भारत का जीवन-दर्शन चाहता हू उसकी ही अपने युग के अनुरूप पुनरावृत्ति कर रहा हूँ।"[44]

(२) "वीणा-पल्लव-काल में मुझपर... स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा है।"[45]

(३) "पल्लव-काल में मैं परमहंस देव के वचनामृत तथा स्वामी विवेकानन्द और राम तीर्थ के विचारों के सम्पर्क में आ गया था।"[46]

40. प्रसाद–काव्य कला तथा निबन्ध-रहस्यवाद पृ. 39
41. वही पृ. 39
42. पंत–छायावाद पुनर्मूल्यांकन पृ. 16
43. वही पृ. 74
44. पंत–उत्तरा प्रथम संस्करण प्रस्तावना पृ. 22
45. वही पृ. 16
46. पंत चिदम्बरा 1959 पृ. 322

(४) "मैं सर्वप्रथम स्वामी रामकृष्ण, विवेकानन्द तथा रामतीर्थ के दर्शन से प्रभावित था पर मेरे मन ने उन्हें पूर्णतः स्वीकर नहीं किया। मैं गांधी तथा मार्क्स के जीवन दर्शनों से प्रभावित हुआ, पर सम्पूर्णतः उसे भी नहीं अपना उसे भी नहीं अपना सका।"[47]

पंत जी को विभिन्न दर्शनों को अपनाते हुए देख लोक में प्रसिद्ध एक कहावत याद आती है– किसी ने कहा– "तेरी मां ने दूसरा विवाह कर लिया"। "बहुत बुरा किया"। लेकिन उसने उसे छोड़ भी दिया– "यह तो और भी बुरा किया।" ऐसी ही स्थिति पंत जी की हो गई है। आश्चर्य तो इस बात का है कि उनके काव्य में दर्शन के प्रभाव से कोई कमी नहीं दिखाई देती बल्कि इन्हीं प्रभावों से उनका काव्य गौरवपूर्ण बन गया है। केवल उनके वक्तव्यों में जो अन्तर्विरोध पैदा हो गया है उससे भ्रान्ति अवश्य फैलती है। निराला जी पर वेदान्त-दर्शन, बौद्ध-दर्शन तथा मार्क्स-दर्शन का प्रभाव है जिसे उन्होंने अस्वीकार नहीं किया। निराला आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनों के सामंजस्य को समग्र दृष्टि मानते हैं और वे अद्वैत तथा बौद्ध-दर्शन के शून्य में कोई भेद नहीं देखते। उनका मत है कि "चरम नास्तिकता और चरम आस्तिकता एक ही बात है। शून्य को चाहे कुछ नहीं कह लीजिए या सबकुछ। वह पूर्ण भी है और कुछ भी नहीं। यही नास्तिक और आस्तिकवाद का रहस्य है। यही कपिल, बुद्ध और नास्तिक दर्शन कहते हैं और यही वेदान्त, गीता और पंतजलि आदि आस्तिक दर्शन। यही सब से ऊंची भूमि है।"[48] इसी ऊँची भूमि में पहुँचकर निराला भौतिकवादी दर्शन अर्थात् मार्क्सवादी दर्शन की चरम सीमा अर्थात् शून्य की प्रतीक्षा करते हैं– "योरुप के भौतिक विज्ञानवाद को और एक सीढ़ी चढ़ना है, बस। सब फैसला प्रकृति कर देगी।"[49]

महादेवी वर्मा के मतानुसार रहस्यवाद ने "परा विद्या की अयार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्राहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बांधकर निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली।"[50] इस मान्यता की समानता प्रसाद की

47. पंत–छायावाद पुनर्मूलयांकन पृ. 81
48. निराला–प्रबन्ध पद्म पृ. 44
49. वही पृ. 44
50. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृ. 106

मान्यता से सहज ही हो जाती है। उन्होंने 'यामा' की भूमिका में रहस्यवाद के सम्बन्ध में कहा कि "जब प्रकृति की अनेक रूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।"[51] यह रहस्यवाद का प्रथम सोपान है अतः द्वितीय सोपान के सम्बन्ध में उनका कथन है– "इसी से इस अनेक रूपता के कारण पर एक मधुरता व्यक्तित्व का आरोप कर उसके निकट आत्म-निवेदन करना इस काव्य का दूसरा सोपान है जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद नाम दिया गया।"[52] इस मान्यता का निष्कर्ष है कि प्रकृति में व्याप्त एक अद्वैत तत्व का परिज्ञान छायावाद और उस अद्वैत तत्व पर व्यक्तित्त्व का आरोप करके उससे प्रेम करना रहस्यवाद है।

इन मान्यताओं के पश्चात् इस वृहत् चतुष्टय की दार्शनिक चेतनाओं के स्रोतों पर प्रकाश पड़ने में सहायता मिल जाती है।

अद्वैतवादी चेतना–यहाँ प्रसाद, निराला पंत तथा महादेवी वर्मा एक ही बिन्दु पर मिल जाते हैं। जहाँ तक विशिष्टाद्वैत का सम्बन्ध है, प्रसाद उस ईश्वर के सौन्दर्य को देखते हैं जो सर्वव्यापी है और कोई भी उसकी उपासना कर सकता है। जिस मन्दिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है और जिसमें रंक नरेश दोनों के लिए समानता है। प्रकृति कानन जिसके विराम के स्थल हैं और जिसके दीप सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र हैं।[53] पन्त जी सृष्टि को सुन्दर अनादि तथा अमर अथवा सत्य बताते हैं।[54] विशिष्टाद्वैत के अनुसार, सम्पूर्ण चिदचिदात्मक वस्तु ब्रह्मात्मक है अतः सत्य है। सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट ब्रहम ही कारण है और स्थूल चिदचिद् विशिष्ट ब्रहम कार्य है। इसीलिए पंत जीवन को नित्य एवं चिरन्तन मानते हैं।[55] निराला की प्रसिद्ध कविता 'तुम और मैं'[56]

51. यामा–महादेवी वर्मा भूमिका पृ. 8
52. वही पृ. वही 1
53. प्रसाद–कानन कुसुम
54. पंत पल्लविनी प्रथम संस्करण पृ. 231
55. पंतगुन्जन, तृतीय संस्करण पृ. 20
56. तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गति सुरसरिता-निराला, परिमल–पृ. 77

विशिष्टाद्वैत की सुन्दर उदाहरण है। महादेवी वर्मा के दीपक (शरीर जगत) और प्रकाश (ब्रहम) और बीन तथा झंकार के सम्बन्ध से विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन हुआ है।[57] डा. राम कुमार वर्मा नश्वर स्वर से अनश्वर गीत लिखने में असमर्थता प्रकट करते हैं। लेकिन रहस्यवादीरूप का उन्होंने अच्छा चित्रण किया है। द्वैताद्वैत की अभिव्यक्ति महादेवी वर्मा तथा निराला के काव्य में हुई है। कवयित्री दूर होकर भी अपने प्रियतम की अखण्ड सुहागिनी है।[58] इसी प्रकार वल्लभ वेदान्त अर्थात् शुद्धाद्वैत का रूप महादेवी वर्मा तथा पन्त में दिखाई देता है। प्रसाद, पंत, निराला, में औपनिषदिक अद्वैतवाद के अनेक उदाहरण हैं। निराला में शांकर अद्वैत भी दिखाई देता है जहा वे माया के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। पंत भी स्पष्ट करते हैं कि माया के कारण ही मनुष्य ईश्वर को भूलकर इसी विषमय संसार को संजीवन मान बैठता है–

नचाता मायावी संसार
लुभा जाता स्वप्नों का हास,
मानते विष को संजीवन
मुग्ध मेरे भूले जीवन।[59]

निराला दार्शनिक व्याख्या करते दिखाई देते हैं कि व्यष्टि और समष्टि में तात्विक रूप से कोई भेद नहीं है, भेद एक भ्रम उप जाता है जिसे माया कहते हैं।[60] पन्त जी पर अरविन्द दर्शन का बहुत गहरा प्रभाव है। निराला पर स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा के काव्य में बौद्ध-दर्शन की छाप स्पष्ट रूप से अंकित है। प्रसाद में नियतिवाद और करुणा का दार्शनिक आधार बड़ा ही पुष्ट है सबसे अधिक तो शैव-दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है। महादेवी वर्मा में क्षणिकवाद, दु:खवाद तथा करुण के रूप बौद्ध-दर्शन की देन है। प्रसाद में भी दुखवाद तथा क्षणिक वाद का गहरा प्रभाव है। पंत पर गाँधीवाद का भी प्रभाव है।

57. बीन बन्दी तार की झंकार है आकाश चारी,
धूलि के इस मलिन दीपक से बंधा है तिमिर हारी।
– महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (1) चतुर्थ संस्करण पृ. 81
58. एक होकर दूर तन से छांह वह चल हूँ,
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।
59. पंत आधुनिक कवि पृ. 17
60. निराला–परिमल पृ. 222

भारतीय दर्शनों के प्रभाव के ही कारण छायावाद में सर्वात्मवादी धारा का प्रवाह है। रहस्यवाद की अनेक धारायें वहाँ दिखाई देती हैं। वेदान्त रहस्यवाद, योग रहस्यवाद, शैव रहस्यवाद प्रकृतिरहस्यवाद, प्रेमपरक रहस्यवाद, राष्ट्रीय रहस्यवाद, भक्ति रहस्यवाद, और शिशु रहस्यवाद के अनेक रूप इसी दार्शनिक चेतना के फल स्वरूप विकसित हुए हैं। डा. राम कुमार वर्मा में अद्वैतवादी दार्शनिक चेतना के प्रति ही आस्था दिखायी देती है।

इस भारतीय दार्शनिक चेतना के अतिरिक्त छायावाद में हीगेल के द्वन्द्वात्मक समन्वयवाद, शापनहार का निराशावाद तथा पलामनवाद, मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा पाश्चात्य सर्वात्मवाद के फलस्वरूप मानवतावाद के प्रभाव को भी देखते हैं। इन विदेशी प्रभावों के अतिरिक्त उमरखैयाम का भोगवाद भी वर्ण्य-विषय बना है। प्रसाद के काव्य से कहीं कहीं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रभाव को सूचित करने वाले संकेत मिल जाते हैं। मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष के द्वारा क्रान्ति की सम्भवना और सुव्यवस्था की बात कही है। प्रसाद जी के महाकाव्य कामायनी में विज्ञानमयी अभिलाषा पंख लगा कर उड़ने लगी है। सभी वर्गों में खाइयाँ उत्पन्न हो गई हैं जो कभी नहीं जुड़ सकतीं—

वह विज्ञानमयी अभिलाषा, पंख लगाकर उड़ने की,
जीवन की असीम आशाएं, कभी न नीचे मुड़ने की।
अधिकारियों की सृष्टि और उनकी वह मोहमयी माया,
वर्गों की खाई बन फैलीं कभी नहीं जुड़ने की।[61]

प्रसाद में कहीं कहीं अस्तित्ववादी दर्शन के पारिभाषिकपद मिल जाते हैं। वे अस्तित्व के सम्बन्ध में सोचते भी हैं। चेतना के अस्तित्व पर वे बल देते हुए उसे व्यापक बताते हैं।[62] इसी प्रकार वे स्पष्ट करते हैं कि आज जीवन निज अस्तित्व बना रखने में व्यस्त हुआ।[63] ये उदाहरण पर्याप्त नहीं हैं अतः प्रसाद में अस्तित्ववाद का विकास सम्भव नहीं हो सका इसी प्रकार डार्विन के यन्त्रवादी विकासवाद का भी केवल आभास मात्र है उसका प्रतिपादन नहीं है। डार्विन के

61. प्रसाद—कामायनी, स्वप्नसर्ग पृ. 186
62. मैं की मेरी चेतनता
सबको ही स्पर्श किये सी,—कामायनी पृ. 297
63. निज अस्तित्व बना रखने में
जीवन आज हुआ था व्यस्त—कामायनी आशा सर्ग

अनुसार यह विश्व संघर्ष-स्थल है और वे ही जीवित रहते हैं जिनमें शक्ति होती है–

यह नीड़ मनोहर कृतियों का, यह विश्व कर्म-रंगस्थल है
है परम्परा लग रही यहाँ ठहरा जिसमें जितना बल है।[64]

प्राकृतिक चयन के सिद्धान्त में जीवित रहने के लिए तथा आत्मविकास के लिए प्रकृति के साथ अनुकूल बनना होता है। इड़ा मनु को यही तथ्य सिखाती है।[65] योग्यतम की उपजीविता के नियम को भी दिखाया है–

स्पर्धा में जो उत्तम ठहरें वे रह जावें
संस्कृति का कल्याण करें शुभ मार्ग बतावें।[66]

इसके अतिरिक्त प्रसाद ने अणु-परमाणु और विद्युत्करण सम्बन्धी सिद्धान्त का भी वैज्ञानिक रूप कामायनी में दर्शाया है। विज्ञान के द्वारा आज विश्व के जिन नवीन तथ्यों को प्रसाद ने मूल्यांकन किया है वे हैं अणु, परमाणु तथा विद्युतकरण। अणु का सूक्ष्यांश परमाणु (Atom) है और उसके भी सूक्ष्यांस विद्युतकण (electron) प्रोटोन (proton) तथा न्यूट्रॉन (neutron) हैं।

(१) अणुओं को ही विश्राम कहां, यह कृतिमय वेग भरा कितना[67]
(२) परमाणु बाल सब दौड़ पड़े जिसका सुन्दर अनुराग लिए।[68]
(३) आकर्षण-विहीन विद्युत्कण बने भारवाही थे मृत्य।[69]

या

विद्युत्करण मिले झलकते रो।

प्रोटॉन का आवेशधन-विद्युत Positive electricity की इकाई और एलैक्ट्रॉनका आवेश ऋण-विद्युत Negative electricity की इकाई माना जाता है। ये दोनों धन और ऋण अथवा पुरुष और प्रकृति हैं। प्रत्येक

64. प्रसाद–कामायनी पृ. 83
65. तालताल पर चलो नहीं लय छूटे जिसमें
तुम न विवादी स्वर छेड़ो अनजाने इसमें–कामायनी पृ. 193
66. कामायनी पृ. 192
67. प्रसाद–कामायनी पृ. 73
68. वही पृ. 80
69. वही पृ. 28

प्रोटॉन के चारों ओर अनेक एलैक्ट्रॉन बड़े वेग से चक्कर लगाते हैं और इनके मिलने से ही सारा संसार बना है।[70] परमाणु-शक्ति में हो सकता है। प्रसाद जी मानवता को विजयिनी बनाने के लिए शक्ति विद्युत्करणों के समन्चय की बात करते हैं–

> शक्ति की विद्युत्कण जो व्यक्त विकल बिखरे हैं हों निरुपाय
> समन्चय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।[71]

पंत जी ने हीगेल और बर्गसाँ की विचारधाओं के प्रभाव को भी ग्रहण किया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि छायावाद युगीन दार्शनिक चेतना बहुमुखी रूप में प्रवाहित हुई है। अतः इस चेतना का परिसर बहुत व्यापक माना जा सकता है। उत्तरछायावाद युगीन दार्शनिक चेतना-धारा-इस युग की कविता को चिंतन के आधार पर दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं– प्रथम आस्तिक दर्शन से सम्बन्धी कविताएँ, द्वितीय वैयक्तिक दर्शन अर्थात् नास्तिक दर्शन से सम्बन्धी कविताएँ। इस विभाजन में कवियों को दो वर्गों में विभक्त नहीं किया गया है क्योंकि प्रायः एक ही कवि ने दोनों दर्शनों को ग्रहण किया है। उदाहरण के लिये छायावादी सुमित्रानन्दनपंत और उत्तरछायावादी रामधारी सिंह 'दिनकर' को ले सकते हैं। इन दोनों के काव्य मे उपर्युक्त दोनों प्रकार की दार्शनिक चेतनाएँ मिलती हैं। दोनों में नकार का दर्शन तथा व्यक्तिवादी स्वर मिलता है। पंत जी भोगवाद में जब विश्वास प्रकट करते हैं तो आश्चर्य होता है कि उनके जीवन की कौन सी ऐसी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने उन्हें ऐसा निराशावादी बना दिया। मुझे तो उनके इस व्यक्तिवाद में छद्म रूप ही प्रतीत होता है। उनका यह छद्म रूप सम्भवतः इसीलिए है कि बच्चन भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा और अंचल इसी व्यक्तिवादी दर्शन के कारण लोकप्रिय होते जा रहे हैं। कहीं मैं पीछे न रह ज़ाऊं। उभके ग्रन्थ 'मधुज्वाल' में ईश्वर के प्रति ही सन्देह प्रकट किया गया है तथा सुरा को सिद्धि माना गया है, हाँ, केवल शर्त यह है कि साक़ी भी साथ में हो–[72]

> करो तुम जप पूजन उपचार,
> नवाओ प्रभु को माथ,

70. वही पृ. 81
71. देखिये–कामायनी मे काव्य संस्कृति और दर्शन–डा. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ. 474
72. प्रसाद–कामायनी पृ. 59

सुरा ही मुझे सिद्धि साकार,
मधुर साक़ी हो साथ।[73]

चाहे 'मधुज्वाल' उमरख्याम का अनुवाद ही क्यों न हों पंत जी का उसके पति आकर्षण अवश्य दिखाई देता है क्योंकि वह इस व्यक्तिवादी दर्शन का प्रचारक बन जाता है, वैसे भी 'कागज की कोठरी में केतौ हू सयानो जाय एक लीक काजर की लागि है पै लागे हैं' की कहावत तो है ही–

कल का दुःख केवल पागलपन
पल पल बहता स्वप्निल जीवन
ले उर में हाला ज्वाला भर
सुरापान कर सुरापान कर।[74]

प्रसाद में भी पीने-पिलाने की बात है लेकिन वहां काव्यगत पात्र की व्यक्तिगत परिस्थितियाँ उसकी कारण बनी हैं। उदाहरण के लिए 'स्कन्दगुप्त' में जगत् को माया का खेल बताते हुए जीवन की छविरसमाधुरी पीने की बात है–

पी लो छवि रस-माधुरी सींचो जीवन-बेल
जी लो, सुख से आयुभर यह माया का खेल।
मिलो स्नेह से गले
घने प्रेम–तरू तले।[75]

रामधारी सिंह 'दिनकर' में उनके काव्य-जीवन के प्रारम्भ से ही निराशावादी स्वर दिखाई पड़ता है। वे घोर अनित्यतावादी और यहां तककि क्षण भंगुरवादी जीवन-दर्शन का प्रतिपादन करते दिखाई देते हैं। उन्होंने अपने काव्य-जीवन के आरम्भ में परिस्थितियों से विषएण होकर अनित्यता और क्षण भंगुरता के निराशावादी गीत गाये हैं। 'रेणुका' तथा 'द्वन्द्वगीत' में निराशामूलक चेतना पाई जाती है। "इन सभी कविताओं में उनकी दृष्टि श्मशान, चिता, कब्रो और खण्डहरों पर जाकर अटक गई हैं, मृत्यु और नाश के उपकरण और नाश के उपकरण उनके लिए सत्य बन गये हैं और जीवन के तन्तु सारहीन।"[76] क्षणभंगुरता के कारण कवि क्षण क्षण में सहमता है–

73. सुमित्रानन्दन पंत–मधुज्वाल, पृ. 82
74. पंत–मधुज्वाल–पृ. 66
75. प्रसाद–स्कन्दगुप्त–पृ. 54

देख क्षण क्षण में सहमता हूँ अरे
व्यापिनी निरस्सारता संसार की,
एक पल ठहरे जहाँ जग हो अभय,
खोज करता हूँ उसी आधार की।[77]

नकारवादी दर्शन के अनुसार 'दिनकर' श्वास की गति में झूम झूमकर नाश को गाता हुआ अनुभव करते हैं। विश्व विनश्वरता का ही एक राग है–

यहाँ श्वास की गति में गाता झूम झूमकर नाश
क्या है विश्व विनश्वरता का एक चिरंतन राग।[78]

नरेंद्र शर्मा नियतिवाद में विश्वास रखते हैं क्योंकि वे नियति के सामने अत्यन्त विश्व हैं। क्रूर नियति ने उनकी समस्त कामनाओं को बन्दिनी बना दिया है।[79] नियति और समाज के समक्ष ही व्यक्ति की विवशता निराशा को जन्म देती है। लेकिन मनुष्य को यह जानना चाहिए कि समाज की क्रूरता और उसका सामना न करने के कारण ही मनुष्य में यह पराज्य-भावना जन्म लेती है। तभी उसे लगता है कि–

मुझको झुकाते जा रहे हैं, निष्ठुर नियति के हाथ।[80]

लेकिन वे आगे चलकर नियति के साथ कार्य-कारण सम्बन्ध भी जोड़ लेते हैं–

बन्द कली सा राज न तेरे
खोले से यों खुल पायेगा,
पर धीरजधर धीरे धीरे
होगा जो आगे आयेगा।
जहाँ कर्म-करण का बन्धन
देर सही अन्धेर नहीं है
शाश्वत नियत नियति की गति में
बन्धु अबेर सबेर नहीं है।[81]

76. डा. सावित्री सिन्हा–युग चरण 'दिनकर' पृ. 81
77. रामधारीसिंह दिनकर–रेणुका पृ. 85
78. वही–पृ. 104
76. हथकड़ी बेड़ी बन दी नियति ने सब कामनाएँ–नरेन्द्रशर्मा-प्रवासी के गीत पृ. 18
80. नरेन्द्र शर्मा–कदली बन पृ. 17

वे ईश्वर को अधिकार के नशे में भूला हुआ अनुभव करते हैं।[82] अतः मानव जीवन निरुद्देश्य बन रहा है और अभाव से अभिशप्त है–

अगम नभ सा मार्ग मेरा शून्य नभ सा मार्ग मेरा
हृदय खंडित इन्दु सा है–
सदा घटता और बढ़ता प्रिय उसे जग की तरलता,
चेतना की प्यास लेकर सदा चल जल पर मचलता
बिम्ब वह भी, चाहता पर विश्व पर प्रतिबिम्ब छोड़े
टूटता जाये, स्वयं पर सलिल से सम्बन्ध जोड़े।
नित अनिश्चित घूमती फिरती नदी सा मार्ग मेरा।[83]

शिव मंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में भी असफल प्रेम के कारण निराशा जनित रूप आभासित होता है। नियति बड़ी क्रूर है–

जब नियति तनिक प्रतिकूल हुई,
तब सारी शेखी धूल हुई,
इस जग में आकर प्यार किया
मानव से इतनी भूल हुई।[84]

वे अपने हृदय में निहित व्यथा की एक कथा ही कविता मानते हैं वे कविता में ही पलायन करते हैं–

मेरे उर में जो निहित व्यथा
कविता तो उसकी एक कथा
छन्दों में रोगाकर ही मैं क्षमाभर को कुछ सुख पा जाता।[85]

81. नरेन्द्र शर्मा--पलाशवन द्वितीय संस्करण पृ. 62
82. भूल गया है ईश्वर जग को पा मादक अधिकार
– नरेन्द्र शर्मा–प्रभात फेरी पृ. 102
83. नरेन्द्र शर्मा–पलाशवन, पृ. 20
84. शिवमंगलसिंह सुमन–हिल्लोल पृ. 99
85. शिव मंगलसिंह 'सुमन' हिल्लोल, द्वितीय संस्करण पृ. 22

नेपाली नियति की कुटिल छाया को जगत् की सुन्दर मूर्ति पर छायी हुई अनुभव करते हैं। कवि ज्योति-दीप्ति के स्थान पर पीर घनेरी ही पाते हैं--

मुझे चाहिए ज्योति दीप्ति, पर मिलती मुझको पीर घनेरी
जीवन के इस अन्धकार में अब पूछो, मैंने क्या पाया
जगती की सौन्दर्य मूर्ति पर कुटिल नियति की काली छाया।[86]

सबसे अधिक विद्रोही तथा निराशामूलक स्वर बच्चन जी में मिलता है। उनके 'एकान्त संगीत' में व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति विद्रोह, व्यक्ति का संस्था के प्रति विद्रोह, व्यक्ति का नियति के प्रति विद्रोह और व्यक्ति मानव का ईश्वर के प्रति विद्रोह के अनेक रूप वर्णित हैं।[87] बच्चन जी मठ, मस्जिद और गिरजाघरों को मनुष्यों की पराजय के स्मारक मानते हुए ईश्वर की उपासना न करने के लिए कहते हैं--

प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर।
युद्ध-क्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित, अविचल प्रतिपल,
मनुज पराजय के स्मारक हैं मठ मस्जिद, गिरजाघर।[89]

बच्चन नियतिवादी कवियों में अग्रणी हैं। नियति बड़ी निरंकुश सत्ता है, उसके समक्ष मनुष्य विवश है।[88] अतः वे निराशा की स्थिति में लोगों को भटकते और भूलते हुए देख रहे हैं तथा अपने हृदय में अंधेरा, संदेह और शंकाओं का डेरा महसूस करते हैं। यह व्यक्तिवादी स्वर बड़ा ही यथार्थ अनुभूति कराता है--

तेज का विश्वास था उर में कभी, अब तो अंधेरा
आज तो सन्देह शंका ने लिया है डाल घेरा,
पथ बताये कौन, सब तो हैं भटकते-भूलते से
मच रहा है शोर मत है ठीक मेरा ठीक मेरा

86. गोपालसिंह 'नेपाली' पंचमी, पृ. 119
87. देखिये आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ--डा. नगेन्द्र पृ. 71
88. बच्चन--एकांत संगीत, पृ. 104
89. हम जिस क्षण में जो करते हैं
हम बाध्य वही हैं करने को--मधुकलश पृ. 11

हर दिशा की ओर बढ़ता, लौटता, फिर दौड़ता है,
है किधर मंज़िल न पाया जान जीवन-यान मेरा।[90]

यही कारण है कि अवसाद और जीवन की क्षणभंगुरता के बोध को विस्मृत करने का एक ही उपाय है वह है सुरापान–

सुरा है जीवन का वह स्वप्न फकड़ता देख जिसे संसार,
हलाहल जीवन-का कटु सत्य जिसे छू करता हाहाकार,
अमृत है जीवन का आदर्श मगर पाता है उसको कौन ?
और जो करता भी है प्राप्त साध वह लेता है व्रत मौन।[91]

बच्चन के साथ भगवतीचरण वर्मा में भी ऐसी ही मस्ती दिखाई देती है जहां व्यक्तिवाद घोर रूप में प्रकट हुआ है। वे प्रेमिका से कहते हैं–

पीने दे पीने दे यौवन की मदिरा का प्याला,
मत याद दिलाना कल की, कल है कल आने वाला।
है आज उमंगों का युग तेरी मादक मधुशाला
पीने दे जीभर रूपसि अपने पराग की हाला।[92]

जीवन की क्षणिकता का बोध इन्हें भी है। वे जीवन को आदि से अन्त तक रुदन, हाहाकार मानते हैं–

कभी उत्थान कभी है पतन
वासनाओं का यह संसार
भयानक भ्रम का है बन्धन,
और इच्छाओं का मण्डल
आदि से अन्त रुदन है रुदन,
एक अनियंत्रित हाहाकार
इसी को कहते हैं जीवन।[93]

90. बच्चन, मधुकलश, पांचवाँ संस्करण पृ. 30
91. बच्चन, हलाहल, पृ. 89
92. भगवतीचरण वर्मा, मधुकण पृ. 25
93. आज के लोकप्रिय हिन्दी-कवि, भगवतीचरण वर्मा
– अमृतलाल नागर पृ. 114

इस नास्तिक दर्शन के प्रतिपादन में रामेश्वर शुल्क 'अंचल'[94] तथा आरसी प्रसाद सिंह[95] के नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

अकेलेपन की अनुभूति तथा वैयक्तिक स्वर उत्तर छायावादी युग में यह अनुभूति प्रधानरूप से उभर कर आई है। यद्यपि छायावादी कविता में भी यह एक विशेषता के रूप में विद्यमान थी लेकिन उत्तरछायावाद में इसका स्पष्ट आधार बन चुका था। क्रांतिकारी जीवन में प्रायः देश की आत्मा सन् १९४२ के लगभग राजनीतिक कारणों से उदास हो चुकी थी। एक एक व्यक्ति बलिदान के लिए पकड़ा जाता और ऐसा लगता कि सचेत कवि मानों इस पीड़ा-बोध को लेकर समस्त समाज से कट गया हो। बहुत से क्रान्तिकारी आदर्श से अलग हट कर विदेशी सत्ता के मुखबिर भी हो चुके थे। देश में एक बार इस क्रांति वर्ग के कुचले जाने से उदासी का वातावरण छा गया था। अतः सन् १९३६ ई. के पश्चात् छायावादोत्तर काल में वैयक्तिकता की प्रवृत्ति बल पकड़ने लगी थी। देश की राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों ने कवि को घोर निराशा में निमग्न कर दिया। व्यक्तिगत सम्बन्धों में भी द्वेषभाव आ चुका था। निराला को साहित्य-युद्ध में अकेला ही जूझना पड़ा। इससे पूर्व प्रसाद की भी कटु आलोचनाएं हो चुकी थीं। एक ओर प्रसाद जी लाला भगवानदीन, आचार्य शुक्ल जैसे समर्थ आलोचकों के द्वारा कटु आलोचना के पात्र बने हुए थे तो दूसरी ओर वैयक्तिक जीवन की अनेक दुःखदायी परिस्थितियों में प्रसाद संघर्ष झेल रहे थे। इसी प्रकार 'निराला' एक ओर 'साहित्य का सन्निपात' जैसे आक्रमण से बनारसीदास चतुर्वेदी का डटकर सामना कर रहे थे तो पारिवारिक जीवन में भी वे अनेक दुर्घटनाओं का सामना कर चुके थे। उनके जीवन में विरोध तथा जीवन की कथा दुःख ऐसी ही प्रमाणित अनुभूतियां थीं। अतः इन दोनों छायावादी कवियों को समाज की उलझनों के बीच परस्पर सम्बन्धों में पड़ने वाली ग्रन्थि जैसे दारुण स्थितियों से गुजरना पड़ा था। कामायनी में मनु के माध्यम से प्रसाद की अकेलेपन की अनुभूति बहुत ही दारुण तथा असहनीय यातना की बोधक है–

94. ऊपर बहुत दूर रहता है शायद आत्म-प्रवंचक एक
– अंचल-मधुलिका पृ. 16

95. मैं अपना आप विधाता हूँ मेरा भगवान गया है मर
– आरसी प्रसादसिंह-संचयिता पृ. 48

कब तक और अकेले? कह दो, हे मेरे जीवन बोलो,
किसे सुनाऊँगा क्या? कहो मत, अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।[96]

यह प्रसाद की आन्तरिक टूटन का ही अहसास है। 'निराला' को भी अकेलेपन की अनुभूति ने असंतुलित अस्त-व्यस्त और हताश कर दिया है--

मैं, अकेला
देखता हूं, आ रही
मेरे दिवस की सांध्य वेला।
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही,
हट रहा मेला।[97]

आराधना में तो यह स्वर दुखता रहता है अब जीवन पतझड़ का जैसा वन उपवन के रूप में अधिक करुण होता गया है--

मग्न तन, रुग्ण मन,
जीवन विषण्ण वन
चलता नहीं हाथ,
कोई नहीं साथ,
उन्नत विनत माथ
दो शरण-दो ब-रण।[98]

निराला के जीवन में खड़ी है दीवार जड़ को घेर कर/बोलते हैं लोग ज्यों मुँह फेरकर, जैसी परिस्थितियां किस अस्तित्ववादी संत्रास से कम हैं। महादेवी वर्मा के व्यक्तिगत जीवन की विषण्णता ही उन्हें सूनेपन की रानी मतवाली बना देती है--

अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती थी दीवाली।[99]

96. प्रसाद--कामायनी पृ. 37
97. कवि श्री निराला पृ. 31
98. निराला--आराधना सितम्बर 1954
99. महादेवी वर्मा--नीहार पृ. 37

बच्चन, 'दिनकर', भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा के काव्य में अकेलेपन की अनुभूति मिलती है–

१. बच्चन– अलगाव की अनुभूति–

मुझसे मिलने को कौन विकल?
मैं होऊँ किसके हित चंचल?
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है
दिन धीरे धीरे ढलता है।[100]

टूटन और पारिवारिक अलगाव की स्थिति–

संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूण हुआ
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं।[101]

२. दिनकर– आत्मीयता के अभाव में अकेलेपन की अनुभूति चाहता था, बोलकर कुछ बात
तुम मेरा अकेलापन
ज़रा कुछ मन्द कर देतीं।[102]

३. भगवती चरण वर्मा– आन्तरिक अलगाव पर आधारित–

एकाकीपन ही अपना पन,
मैं अपने से मजबूर प्रिये।
उर शंकित है, पग डग मग हैं,
तुम होती जातीं दूर प्रिये।[103]

४. नरेन्द्र शर्मा– अस्मिता की घोर अत्यांतिकता के आधार पर––

100. बच्चन–एकांत संगीत (1939 ई.) से वाग्देवी सं. नरेश मेहता पृ. 357
101. वही पृ. 360
102. कोयला और कवित्व–विदेहिनी कविता
103. कविता और कविता सं. इन्द्रनाथ मदान पृ. 100

मैं किसे अपना कहूंगा,
कह रहा सुनसान भी जब
बन्धु जाओ व्यस्त हूँ,
मधुमास-स्वागत-काज में अब?
न हो कोई, मैं सुनूँगा स्वयं आत्म-प्रलाप।[104]

छाया-वादोत्तर युगीन आस्तिकता पर आधारित दार्शनिक चेतना के अनेक आयाम हैं। बच्चन मृत्यु और नियति की अनेक यातनाओं को सहते हुए प्रकृतिस्थ प्रतीत होते हैं जब वे इस प्रकार अपने मन को समझाते हैं–

जो बीत गई सो बात गई।
अम्बर के आनन को देखो
कितने इस के तारे टूटे
कितने इसके प्यारे छूटे
जो छूट गये फिर कहां मिले,
पर बोलो टूटे तारों पर

कब अम्बर शोक मनाता है
जो बीत गई सो बात गई।[105]

अतः उन्हें नाश के साथ ही निर्माण के महत्व का बोध प्राप्त हुआ और जीवन में भावात्मक दृष्टि का उन्मेष होने लगा। वे 'गीता' का महत्व समझ गये–

आत्मा की अजर अमरता के हम विश्वासी,
काया को हमने जीर्ण वसन बस माना है,
इस महा मोह की वेला में भी क्या हम को,
वाजिव अपनी गीता का ज्ञान भुलाना है।[106]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' अपने आराध्य से प्रार्थना करते दिखाई देते हैं–

104. वही पृ. 104
105. बच्चन व्यक्ति और कवि सं. बांके बिहारी भटनागर पृ. 76-77
106. बच्चन–देखिये-बच्चन की कविता निबन्ध–आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ–डा नगेन्द्र पृ. 81

ओ मेरे निराकार आओ साकार बनो।
निरवलम्ब जीवन के तुम चिर आधार बनो।[107]

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के दृश्य में कोई अव्यक्त, अज्ञात पीड़ा का संचार कर रहा है। वे रहस्यवादी के स्वर में पूछने लगते है--

कौन हो तुम मर्म में जो आज तृष्णा सी जगाते?
कौन आकुल प्राण को करते विकल उन्यन अचेतन।
कौन प्यासे से दृगों में धूम भर जाते अषावन,
हो उठा किस गंध से आकुल अचेतन स्वप्न दृगमें।[108]

आरसी प्रसाद सिंह 'पांच जन्म' में आध्यात्मिक संदेश प्राप्त करते हैं जो वैषम्य के विरुद्ध मानव को जागृत कर रहा है--

तू परम कल्याणमय, चिरशान्ति से अभियुक्त है तू,
और शतशत बन्धनों के जाल से उन्मुक्त है तू,
मुक्त है ऐसा कि जैसा व्योम, पारावार[109]

वे लौकिक भेदों से हटकर मानव की मूल एकता में विश्वास रखते हैं। मानवतावादी हृष्टिकोण दृष्टव्य है--

जाति, रंग देश से मनुष्य तू विभिन्न है।
ऊपर उठो, ऊपर उठो, क्योंकि तुम इंसान हो
परमात्मा की जान हो
तुम गगन से और भी ऊंचे उठो, वृत्ति पाशव छोड़ दो।[110]

केदार नाथ मिश्रप्रभात ने नव-युग के दृश्य को ही बड़े रूप-रंग के साथ अंकित किया है जो उनकी आस्था की प्रतीक है... यह देख पूर्व का पटल प्रान्त है, लिये खड़ा शाश्वत भविष्य।

107. नवीन--क्वासि पृ. 34
108. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' अपराजिता पृ. 20
109. आरसीप्रसाद सिंह--पांच जन्म पृ. 4
110. वही पृ. 39

वह रूप देख, वह रंग देख, वह रूप-रंग का मेल देख,
तम में अनन्त के ज्योतिर्मय युग परयुग कठआना जाना, बनना।[111]

गोपालसिंह नेपाली आध्यात्मिक ज्योति को जलाने वाले देहरूपी दीपक का सुन्दर रूपक प्रस्तुत करते हैं। यह दृष्टि उनके नियतिवाद से भिन्न है–

दीपक जलता रहा रात भर
तनका दिया, प्राण की बाती, दीपक जलता रहा रात भर
दुख की घनी बनी अंधियारी, सुख के टिम टिम दूर सितारे।
उठती रही पीर की बदली, मन के पंछी उड़ उड़ हारे।
बची रही प्रिय की आँखों से मेरी दीपक जलता रहा रातभर।[112]

नरेन्द्र शर्मा में आस्था तथा विश्वास विकसित होता है। वे अपने अन्तर में भरे हुए दिव्य प्रकाश अनुभव करते हैं–

तिमिर मामा–जाल को हर ज्योति से जीवन गया भर,
रहेगा ज्योतित निरन्तर
ज्योति-चुम्बन से हृदय के दीप की बाती जली।
घर घर जली दीपावली।[113]

सबसे अधिक आस्तिक तथा अटूट आस्था सम्पन्न प्रवृत्ति मूलक स्वर 'दिनकर' का प्रतीत होता है। वे हृदय की मधुर मादक उष्ण भावों से अभिभूत होकर जगत के भोग में प्रवृत्त दिखाई देते हैं। यही उनके व्यक्तित्व का वास्तविक रूप है–

जिस दिन विजन गहन कानन में ध्वनित मधुर मंजीर हुई
चौंक उठे ये प्राण, शिरायें उर की विकल अधीर हुई
तूने बन्दी किया हृदय में देवि' मुझे तो स्वर्ग मिला
आलिंगन में बंधा और ढीली जग की जंजीर हुई।[114]

111. केदारनाथ मिश्र प्रभात–संवर्त पृ 76
112. गोपाल सिंह नेपाली–कविभारती पृ 617
113. नरेन्द्र शर्मा–पलाशवन पृ. 23
114. दिनकर–द्वन्द्वगीत पृ 11

वे इस जगत् के प्रति आस्था रखते हुए अपनी आसक्ति लौकिकता के प्रति व्यक्त करते हुए कहते हैं

किसी लोभ से इसे छोड़ दूँ, यह जग ऐसा स्थान नहीं
और बात क्या? बहुधा मैं चाहता मुक्ति वरदान नही
इच्छा है, सौ सौ जीवन या इस भूतल पर आऊँ मैं।[115]

इतना ही नहीं बल्कि वे सन्यास को पलायन मानते हैं और उसे कायरता कहते हैं–

धर्म राज सन्यास खोजना
कायरता है मनकी,
है सच्चा मनुजत्व ग्रन्थियाँ
सुलझाना जीवन की।[116]

'दिनकर' कर्मवाद में आस्था प्रकट करते हैं। अतः वहाँ नियति या भाग्य को चुनौती दी गई है–

विधि ने था क्या लिखा भाग्य में खूब जानता हूँ मैं,
बांहों को पर कहीं भाग्य से बली मानता हूँ मैं
महाराज, उद्यम से विधिका अंक उलट जाता है,
किस्मत का पासा पौरुष से हार पलट जाता है।[117]

वे क्रांति का उदघोषभीभावात्मक रूप में करने लगते हैं–

क्रान्ति इसलिए मत करो
कि कुछ लोगों से तुम्हें नफरत है,
बल्कि इसलिए कि जिंदगी में
तुम नयी सांस फूकना चाहते हो।[118]

115. दिनकर–रेणुका पृ. 63
116. दिनकर–कुरुक्षेत्र पृ. 109
117. दिनकर–रश्मिरथी-कर्ण का कथन पृ. 51
118. दिनकर–आत्मा की आँखें पृ. 59

इस प्रकार छायावादोत्तर युगीन दार्शनिक चेतना अंत में भावात्मक ही है। प्रगतिवादी दार्शनिक चेतना-धारा--सन १९२५ तक मार्क्स की विचार-धारा का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व में दिखाई देने लगा था। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने मनुष्य को सामाजिक वैषम्य से मुक्त करने का सन्देश ही नहीं दिया अपितु उसे एक व्यावहारिक मार्ग भी दिखाया। यह मार्ग वर्ग-क्रान्ति का था। अतः भारत में भी इस विचार-धारा ने बीजारोपण किया। राजनीतिक स्तरपर इस दार्शनिक चेतना का प्रथम उन्मेष सन् १९२५ ई. में हुआ। १९२५ ई. में कानपुर में प्रथम अखिल भारतीय कम्यूनिस्ट सम्मेलन हुआ। सन् १९२६/२७ में कम्युनिस्टों ने मज़दूर और किसान पार्टियाँ संगठित कीं। सन् १९२६ ई. में सरकार ने अनेक कम्युनिस्टों और मजदूर नेताओं को पकड़ लिया और उन पर मुकद्दमें चलाकर १९३३ ई में. उन्हें लम्बी लम्बी सज़ाएँ दी गई। उनमें मुज़फ्फरअहमद, एस.ए. डांगे और शौकत उस्मान आदि थे। पं. जवाहर लाल नेहरू ने रूस से लौट कर कम्युनिज़्म और रूस की बड़ी प्रशंसा की। "पंडित जवाहरलाल नेहरू जितने कम उम्र के थे उतने ही बड़े राजनीतिज्ञ और लोकप्रिय नेता थे। उनका अभिभाषण क्या था (जो १९२६ में लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन में दिया गया था) ऐसा लगता था मानो उन्होंने अपने हृदय को उंडेलकर देशवासियों में स्वतंत्रता की समग्रचेतना ही जाग्रत कर दी थी। उन्होंने भाषण में भारत को स्वतंत्र करने की योजना और स्पष्ट साम्यवादी आदर्शों को व्यक्त किया था।[119] ऐसी दशा में मज़दूर और मेहनतकश जनता के महत्व के उच्च कांग्रेसी नेताओं के आज़ादी के संघर्ष में रेखाकित किया था। देश की राजंनीति में यह महत्त्वपूर्ण मोड़ था जिसका प्रभाव साहित्य पर दिखाई देने लगा। प्रगतिशील लेखक संघ की मूल स्थापना इंग्लैण्ड में हुई।

इंग्लैण्ड में उस समय मार्क्सवादी लहर को पहचानने वाले कुछ भारतीय शिक्षित नवयुवक थे जिनका नेतृत्व सज्जाद ज़हीर तथा मुल्कराज आनन्द ने किया। लंदन में ही सारा कार्य-क्रम निश्चित किया गया। इन युवकों में सभी साहित्यकार नहीं थे। डा. अशरफ अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में इतिहास मे प्रोफेसर, डा. महमूद जफर एस.ए.ओ. कालेज अमृतसर के वाइस प्रिंसीपल उनकी पत्नी रशीदजहाँ, कलकत्ता के हीरेन मुकर्जी, हैदराबाद के डा. यूसुफ हुसैन खां और

119. पट्टमे सीता रमैया : कांग्रेस का इतिहास पृ. 181

बम्बई के हाथीसिंह प्रमुख कार्यकर्ता थे। भरतीय प्रगतिशील लेखक संघ के भारत में अहमद अली फिराक गोरख पुरी, डा. सैयद एजाज हुसेन, प्रो. एहतशाम हुसेन, शिवदान सिंह चौहान, नरेन्द्र शर्मा आदि प्रमुख सदस्य थे। भारत में सन् १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन हुआ था जिसका समापतित्व मुंशी प्रेमचंद्र ने किया जिसमें साहित्य तथा भाषा का जनवादी रूप स्वीकृत हुआ। सन् १९४० ई. में छपरा के राजेन्द्र पुस्तकालय में भाषण देते हुए रामाधारी सिंह 'दिनकर' ने प्रगतिवाद पर प्रकाश डाला– ''वर्तमान प्रगतिवाद जीवन और इतिहास साहित्यिकों के सीधी तरह से भाग लेने की चेष्टा का परिणाम है। लेकिन इस चेष्टा के परिणाम स्वरूप साहित्य का कर्म-पक्ष ही प्रबल हो रहा है। उसका ज्ञान-पक्ष न्यून पड़ता जा रहा है। ऐसा लगता है कि कर्म ही ज्ञान हो छोड़ने जा रहा है।''[120] हिन्दी में प्रगतिवाद का समय सन १९३६ से १९४३ के बीच माना जाता है लेकिन छायावादी कवियों निराला और पंत ने प्रगतिवादी विचार-धारा की रचनाओं का सूत्रपात कर दिया था। निराला ने किसान के सर्वहारा रूप की व्यंजना अपनी प्रसिद्ध कविता 'बादलराग' में की है। वह अपना लहू पसीना एक करके भी श्रमफल का उपभोग नहीं कर सकता, वह भूखों मरता है, और अर्द्धनग्न जीवन व्यतीत करता है–

चूस लिया है उसका सार
हाड़ मात्र ही है आधारा
ऐ जीवन के पारावार।[121]

जिस प्रकार वे कृषकों के प्रति करुण दृष्टि अपनाते हुए बादल का ध्यान आकर्षित कराते हैं उसी प्रकार श्रमिक बालिका के प्रति करुणा ही प्रधान है–

चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता हुआ रूप
उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई

120. रामधारीसिंह 'दिनकर'–मिट्टी की ओर पृ. 82
121. निराला–परिमल–(बादल राग) 151
122. निराला–वही वह तोड़ती पत्थर

प्रायः हुई दुपहर
वह तोड़ती पत्थर।[122]

'परिमल' और 'गीतिका' में कई ऐसी कविताएं हैं जहाँ प्रगतिवादीस्वर सुनाई देता है। इन रचनाओं के पश्चात् तो निराला के काव्य में विशेषकर 'नये पत्ते' और 'बेला' में वह सुनिर्दिष्ट रूप प्रतीत होता है। निराला की प्रगतिवादी अन्तश्चेतना का उन्मेष इस प्रकार हुआ है–

आज अमीरों की हेवली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली
डालेंगे अंधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।[123]

'निराला' में वर्ग-चेतना का कोई रूप नहीं मिलता है। यहाँ पर उनके मन की खीझ, पराभव तथा अभावों से निरन्तर संघर्ष जन्य आक्रोश और उनका विस्फोटक अहं की व्यंजना ही अधिक हुई है। उदाहरण के लिए 'कुकर मुत्ता' के प्रथम भाग में निराला जी ने पूंजीपति के प्रतीक गुलाब पर सर्वहारा शोषित के प्रतीक कुकरमुत्ता का आक्रोश देखिये–

अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगो आब'
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट
रोज़ पड़ता रहा पानी,
तू हरामी खानदानी।[124]

सन् १९३६ के पश्चात् पन्त जी पर मार्क्सवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनका कथन है– "आधुनिक भौतिकवाद का विषय ऐतिहासिक (सापेक्ष) चेतना है और अध्यात्म का विषय शाश्वत (निरपेक्ष) चेतना है। दोनों ही एक दूसरे के अध्ययन और ग्रहण करने में सहायक होते हैं और

123. निराला–बेला पृ. 70
124. निराला–कुकुरमुत्ता पृ. 4

ज्ञान के सर्वांगीण समन्वय के लिए प्रेरणा देते हैं।[125] पंत जी ने अन्तर्मुखअद्वैत को पुनर्जीवित करने के लिए ही साम्य के वस्तु-विधान का समन्वय किया है–

अन्तर्मुख अद्वैत पड़ा था युग-युग से निष्क्रिय निष्प्राण,
जग में उसे प्रतिष्ठित करने दिया साम्य ने वस्तुविधान।[126]

उन्होंने सत्यरूपी नदी के दो किनारे माने हैं– भौतिकता और आध्यात्मिकता–

बहिरंतर, आत्मा-भूतों से है अतीत वह तत्व
भौतिकता-आध्यात्मिकता केवल उसके दो फूल,
व्यथित विश्व से स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।[127]

पंतजी ने शोषण की स्थितियों का बड़ा उदासीमय चित्र खींचा है। सामान्तवादी शोषण ने ग्रामों को किस दयनीय स्थिति में पहुँचा दिया है' इसका परिचय पंत। जी की 'ग्राम चित्र' शीर्षक कविता से मिलता है–

यहाँ खर्व नर (वानर?) रहते युग-युग से अभिशापित
अन्न वस्त्र-पीड़ित, असभ्य, निर्बुद्धि, पंक में पालित
यह तो मानव लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित
यह भारत का ग्राम, सभ्यता-संस्कृति से निर्वासित
झाड़फूंस के विवर-यही क्या जीवन-शिल्पी के घर?
कीड़ों से रेंगते कौन ये? बुद्धि प्राण नारी नर।[128]

श्रमिकों की दयनीय दशा को देखकर पंतजी का मन आन्दोलित हो उठता है तथा वे सोचने लगते हैं–

क्या यह संभव नहीं, व्यवस्था में जग की कुछ हो परिवर्तन?
कर्म और गुण के समान ही, सकल आय का हो वितरण?
मिलकर जन निर्माण करें जग, मिलकर भोग करें जीवन का
जन विमुक्त हों जग शोषण से हो समाज अधिकारी धन का।[129]

125. पंत, आधुनिक कवि, प्रथम संस्करण, पर्यालोचन, पृ. 31
126. पंत–युगवाणी– 1939 पृ. 42
127. वही पृ. 42
128. ग्राम्या, पंत पृ. 16
129. पंत–ग्राम्या पृ. 66-67

पंतजी अपने हृदय में युगान्तर के प्रति आस्था रखते हुए वर्गहीन समाज की आशा प्रकट करते हैं–

साक्षी है इतिहास-आज होने को पुनः युगान्तर,
श्रमिकों का शासन होगा अब उत्पादन यंत्रों पर।
वर्गहीन सामाजिकता देगी सब को सम साधन,
पूरित होंगे जन के भव-जीवन के निखिल प्रयोजन। [130]

'दिनकर' ने भी मार्क्सवादी विचारों को ग्रहण किया है। उन पर साम्यवाद और गाँधीवाद का एक साथ प्रभाव परिलक्षित होता है। उनका कथन है– "जिस तरह मैं जवानीभर इकबाल और रवीन्द्र के बीच झटके खाता रहा, उसी प्रकार मैं जीवनभर गांधी और मार्क्स के बीच झटके खाता रहा हूँ। इसीलिए उजले को लाल से गुणा करने पर जो रंग बनता है वही रंग मेरी कविता का रंग है। मेरा विश्वास है कि अन्ततोगत्वा यही रंग भारतवर्ष के व्यक्तित्व का भी होगा। [131] में वे कृषकों के कठिन परिश्रम ओर वर्षा कराते हैं–

ऋण शोधन के लिए दूध घी बेच बेच धन जोड़ेंगे।
बूँद बूँद बेचेंगे अपने लिए हीं कुछ छोड़ेंगे।
शिशु मचलेंगे दूध देख, जननी उनको बहलायेगी।
मैं फाड़ूंगी हृदय धनपतियों की होगी उन पर मार
तब मैं बरसूँगी बनबेबस के आँसू सुकुमार। [132]

भगवती चरण वर्मा ने गांव का नारकीय तथा दयनीय जीवन मूर्तिमान कर दिया है जहाँ शोषण में पिसती हुई मानवता सुबह-शाम असफलता और निराशा का धुंधलापन महसूस करती है। कैसा दयनीय चित्र है–

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे
कुछ पांच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोड़ों से
हैं उठे हुए कुछ कच्चेघर

130. पंत–युगवाणी पृ. 38
131. दिनकर–रश्मिलोक पृ. द (भूमिका)
132. दिनकर–रेणुका पृ. 1

मैं कहता हूँ खंडहर उसको
पर वे कहते हैं उसे ग्राम
जिसमें भर देती निज धुंधलापन
असफलता की सुबह शाम।
पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ
नारिया जन रही हैं गुलाम।
पैदा होना फिर मर जाना
बस यह लोगों का एक काम।[133]

वर्मा जी ने 'राजा साहब का वायुदान' शीर्षक कविता में सामन्त वर्ग की सनकभरी मानसिकता तथा शोषण के अनेक रूपों का उदघाटन किया है तथासर्वहारा किसान की दुर्दशा का चित्र खींचा है--

क्या नहीं सुना तुमने अब तक
हैं मोल ले रहे जिलेदार
पौने दामों पर सकलधान,
इस तरह हो रहा है वसूल,
इस साल बँधा ड्यौढ़ा लगान,
इसलिए, क्योंकि है मोल लिया
राजा साहब ने वायुयान।[134]

नरेन्द्र शर्मा के शब्दों में कृषकों की अन्तरात्मा चेतावनी दे रही है कि यदि शीघ्र ही इनकी युगों से चली आती भूख-प्यास को तृप्त न किया तो क्रान्ति की भयंकर अग्नि प्रज्वलित होगी–

अभी समय है शीतल जल दो, हमें न हो शोणित अनुराग
कभी न बुझ पायेगी जल से, ऐसी कठिन जलकण बरसा दें
उठें न इस संतप्त कंठ से कहीं नाश की लपटें जाग।[135]

अब शोषण की चरम सीमा आ चुकी है इसलिए क्रांति अवश्यभावी है क्योंकि सर्वत्र करोड़ों कंठों से क्रांति का गीत गाया जा रहा है–

133. भगवतीचरण वर्मा-मानव-(भैंसा गाड़ी) पृ. 75
134. भगवतीचरण वर्मा–मानव (राजासाहब का वायुयान) पृ. 75
135. नरेन्द्र शर्मा–प्रभात फेरी पृ. 19

भर चुका है घट, निकट आई चरम वेला
लपट बनकर नाचता है मृतिका का ज्वलित ढेला।
बहुत दिन तक पोषितों ने शोषितों से खेल खेला,
कोटि कण्ठी क्रांति-स्वर अज्ञात आल्हा गा रहा है।[136]

प्रगतिवादी कवि नये युग के प्रति आशान्वित है। ये कवि लोकमंगल की भावना को महत्व देते हैं तथा निर्माण में आस्था रखते हैं। उदाहरण के लिए शील की कविता 'कवि और कोयल' की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

क्षीण होती जा रही मरु
प्यास की कुंठित कहानी
आ रही खग बालिकाओं
की प्रचुर रवि किरण माला
कूक कुहुकिनि कूक कवि के
स्वप्न सच्चे हो रहे हैं
अब, नये निर्माण के कवि
कलुष जग का धो रहे हैं।[137]

प्रगतिवादी कविधर्म, समाज तथा राजनीतिक रूढ़ियों पर भी प्रहार करते हैं क्योंकि रूढ़ियाँ प्रायः प्रतिक्रियावादी लोगों की ढालें हैं। त्रिलोचन शास्त्री धर्म के दृढ़ दुर्गों पर आक्रमण करते दिखाई देते हैं–

करता हूँ आक्रमण धर्म के दृढ़ दुर्गों पर
कवि हूँ, नया मनुष्य मुझे यदि अपनायेगा
उन गानों में अपने विजय गान गायेगा
जिनको मैंने गाया है...
धर्मविर्निर्मित अन्धकार से लड़ते लड़ते
आगामी मनुष्य, तुम तक मेरे स्वर बढ़ते।[138]

136. नरेन्द्र शर्मा–अग्निशस्त्र पृ. 115
137. शील-लावा और फूल–(कवि और कोयल) पृ. 123
138. त्रिलोचन शास्त्री-देखिये-हिन्दी के प्रगतिशील कवि–डा. रणजीत पृ. 149

नागार्जुन एक ऐसे प्रगतिवादी कवि हैं जिनमें यथार्थ जीवन के प्रति गहरी अनुभूति है। उनकी कविता 'अकाल के बाद' घर की स्थिति का सजीव चित्र इस प्रकार उभरा है–

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आये घर के अन्दर कई दिनों के बाद
चमक उठीं घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौवे ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।[139]

इन कवियों के अतिरिक्त केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, शिव मंगलसिंह सुमन, अंचल तथा नीरज के नाम भी उल्लेखनीय हैं। केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवाद की मुख्य दार्शनिक चेतना को समझ गये हैं और वह है सामूहिकता का दर्शन–

सब के लिए समर्पण सब कुछ
अपना अहं पुरातन नूतन
जीवन के दिन रात प्रहर क्षण
आलिंगन आकर्षण चुंबन
सामूहिक उन्नति के आगे
सामूहिक अष्टांग समपर्ण
अपनी अपनी भिन्न इकाई का
अब कोई मूल्य न दर्शन।[140]

संक्षेप में व्यक्ति के स्तर पर व्यक्ति का शोषण, जाति के द्वारा व्यक्ति का शोषण, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद जमींदारी, नौकरशाही इत्यादि के द्वारा जनता का शोषण के विरुद्ध प्रगतिवादी कवि ने आवाज़ उठाई है। यदि हम इस आधार पर प्रगतिवादी चेतना का मूल्यांकन क़रें तो उसे सबसे अधिक जनता के समीप

139. नागार्जुन की कविता–अमृत राय का लेख, धर्मयुग 7 सितम्बर 1974
140. केदारनाथ अग्रवाल–फूल नहीं रंग बोलते हैं पृ. 58

पाते हैं लेकिन जब इस चेतना के काव्यात्मक पक्ष का मूल्यांकन करते हैं तो निश्चय ही शिल्प की दृष्टि से वह छायावाद की तुलना में उत्कृष्ट नहीं ठहरता। यही कारण है कि प्रगतिवाद अधिक दिनों तक काव्याकाश में नहीं गूँज सका। प्रयोगवादी दार्शनिक चेतना-धारा-प्रयोगवाद का आरम्भ सन १९४३ ई. में तारसप्तक के प्रकाशन के साथ होता है तथा सन् १९५४ ई. तक अर्थात् डा. जगदीश गुप्त के सम्पादन में 'नई कविता' पत्रिका के प्रथम अंक तक इसकी अवधि मानी जा सकती है। यद्यपि नई कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है क्योंकि तीसरा सप्तक १९५९ ई. में प्रकाशित होता है और उसमें भी रूप सम्बन्धी अनेक प्रयोग हुए हैं। प्रयोगवादी काव्यधारा के सूत्रपात के मूल में अर्थ और प्रयोग की समस्या रही है। घिसेपिटे शब्दों को नया रूप देकर उनमें नया अर्थ भरकर और काव्य-रचना में नये प्रयोग को महत्त्व दिया गया है। सार्थक शब्द तथा सामाजिक संदर्भ का गहरा सम्बन्ध प्रयोगवाद की प्रधान विशेषता है। प्रयोगवाद में मनोवैज्ञानिकता को महत्त्व तो मिला ही है साथ ही नये अर्थो और नये प्रयोगों में विविधता भी दिखाई देती है।

अर्थ और प्रयोग के अच्छे उदाहरणों के रूप में अज्ञेय की कविता 'कलंगी बाजरे की' 'अजितकुमार की कविता 'कवियों का विद्रोह' पायः समीक्षकों ने बार-बार उद्धृत की हैं। कवि की दृष्टि भाषा के सम्बन्ध में यथार्थवादी रही है। अज्ञेय कहते हैं– ''कवि का कार्य नये अनुभवों की, नये-नये भावों की खोज नहीं है, प्रत्युत पुराने और परिचित भावों के उपकरण से ही ऐसी नूतन अनुभूतियों की सृष्टि करना जो उन भावों से पहले प्राप्त नहीं की जा चुकी है। वह नई धातुओं का शोधक नहीं है, हमारी जानी हुई धातुओं से ही नया योग ढालने में और उससे नया चमत्कार उत्पन्न करने में उसकी सफलता और महानता है।[141]

प्रथम तार सप्तक के कवि हैं गजानन माधव मुक्ति बोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचेव, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय। मुक्ति बोध लिखते हैं– ''मेरे बाल मन की पहली भूख सौन्दर्य और दूसरी विश्व-मानव का सुख-दुःख–इन दोनों का संघर्ष मेरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी।[142] मुक्तिबोध पर मनोविश्लेषणवाद तथा बर्गसाँ की

141. अज्ञेय-त्रिशंकु पृ. 39
142. तारसप्तक–सं. अज्ञेय पृ. 6

जीवन-शक्ति के सिद्धान्त के अतिरिक्त मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद का भी प्रभाव परिलक्षित होता है।

नेमिचन्द्र जैन मार्क्सवादी दार्शनिक चेतना को लेकर चले हैं अतः उनकी रुचि प्रगतिशीलता की ओर अधिक दिखाई देती है। तीसरे कवि भारतभूषण अग्रवाल हैं। वे कम्यूनिस्ट विचार-धारा से प्रभावित होने के कारण मार्क्सवाद को सामाजिक समस्याओं का समाधान मानते हैं। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं जिनमें भाषा के प्रति दृष्टिकोण प्रगतिशील है–

कवि:। तोड़ो अपना शब्दजाल जो आज खोखला शून्य हुआ
यह है अपने पुरखों की वैभव-भोग़मयी कलुषित वाणी
मदमत्त विलासिन् त्याग इसे
बनना है तुझको तो अगुआ
युग का, युग की भूखी कमज़ोर हड्डियों का जिनका पानी
है उठा खौल, घिर रहा विश्व पर घटाटोप बादल बन कर।[143]

चौथे कवि प्रभाकर माचवे हैं। उनकी अभिव्यक्ति चिंतनपरक प्रतीत होती है–

प्रेम क्या किसी मृदूष्ण\ स्पर्श का भिखारी?
प्रेम वो प्रपात
गीत दिवा रात
गा रही अशांत

प्रेम आत्मा–विस्मृत पर लक्ष्य च्युत शिकारी।[144]

मुक्तिबोध में दार्शनिकता का स्तर तारसप्तक में बहुत कुछ अलगाव का बोध है–

और जाने कयों/मुझे लगता कि ऐसा ही अकेला नील तारा/
तीव्रगति/जो शून्य में निस्संग/जिसका पथ विराट/
वह छिपा प्रत्येक उर में प्रतिहृदय में कल्मषों के बाद/

143. वही पृ. 77
144. वह पृ. 135

जैसे बादलों के बाद भी है शून्य नीलाकाश/ उसमें
भागता है एक तारा/जो कि अपने ही प्रगति पथ का सहारा।[145]

पांचवें कवि हैं गिरिजाकुमार माथुर। उन्होंने कविता में विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान अधिक दिया है। उनका कथन है– "विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है।[146] ऊपर मनोविश्लेषण वाद का गहरा प्रभाव है–

मैं वैसा का वैसा ही रह गया सोचता
पिछली बातें,
दूज कोर से उस टुकड़े पर
तिरने लगीं तुम्हारी सब लज्जित तस्वीरें।
सेज सुनहली,
कसे हुए बन्धन में चूड़ी का झर जाना।
निकल गई सपने जैसी वे रातें
याद दिलाता रहा सुहाग भरा यह टुकडा।

छठे कवि रामविलास जी हैं। वे पहले आलोचक है बाद में कवि। अज्ञेय सातवें कवि हैं। वे प्रयोग के सम्बन्ध में लिखते हैं– प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये है, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है किन्तु कवि क्रमशः यह अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया। या जिनको अभेद्य मान लिया गया है।"[147] उन पर मनोविश्लेषण वाद का गहरा प्रभाव यहाँ पर दिखाई देता है क्योंकि वे आधुनिक युग के साधारण व्यक्ति को मौन-वर्जनाओं का पुंज मानते हैं–

घिर गया नभ उमड़ आये मेघ काले/ भूमि के कंपित उरोजों पर झुकासा/ विशद, श्वासाहत, चिरातुर/छा गया इन्द्र का मील वक्ष/वज्र सा, यदि तड़ित से झुलसा हुआ सा/आह, मेरा श्वास है उत्तप्त/धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार–/ प्यार है अभिशप्त/तुम कहाँ हो नारि?[148]

145. मुक्तिबोध-तारसप्तक-सं. अज्ञेय पृ. 12-13
146. गिरिजाकुमार माथुर तारसप्तक-सं. अज्ञेय पृ. 42
147. अज्ञेय–प्रथम तार सप्तक पृ. 270
148. वही पृ. 276

दूसरे सप्तक में भवानी प्रसाद पहले कवि हैं। उनका विचार है– "दर्शन में अद्वैत, वाद में गाँधी का और टेकनीक में सहज लक्ष्य ही मेरे बन जायें, ऐसी कोशिश है।[149] दूसरी कवयित्री है– शकुंतला माथुर। वे अपनी रचनाओं में बहुजन व्यास हैं। उन्हें विश्वास है– "मैं अपनी सामाजिक स्थिति के वर्तमान से पूर्णतया परिचित हूँ और उसके प्रति ईमानदार रहना भी मैंने चाहा है।[150] चौथे कवि शमशेर बहादुर सिंह हैं। वे अपनी कविता की भूमि के सम्बन्ध में कहते हैं– "कला का संघर्ष समाज के संघर्षों से एकदम कोई अलग चीज़ नहीं हो सकती और इतिहास आज इन संघर्षों का साथ दे रहा है[151] पाँचुवें कवि नरेश कुमार साहितय तथा राजनीति में भेद नहीं करते। वे प्रगतिशील दिखाई देते हैं लेकिन अन्त में प्रयोगों के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते दिखाई देते हैं। छठे कवि रघुवीर सहाय मार्क्सवादी दार्शनिक चेतना के आधार·पर सामाजिक यथार्थ तक पहुँचने के लिए वैज्ञानिक तरीका उचित मानते हैं। वे मार्क्सवाद और कविता के सम्बन्ध. में अपना मत प्रकट करते हैं– "मगर मार्क्सवाद को कविता पर गिलाफ की तरह चढ़ाया जा सकता। उसके लिए मध्यवर्गीय धोका खाते रहने वाले ढुलमुल यकीन को अपनी बौद्धिक चेतना को जागरूक रखना पड़ेगा और बराबर जागरूक रह कर एक दृष्टिकोण बनाना होगा। यह दृष्टिकोण सामाजिक, वास्तविक, साम्यवादी और इसलिए सही और स्वस्थ होगा।'[152]

'दूसरा सप्तक' के अंतिम कवि हैं– धर्मवीर भारती जो अपने दृष्टिकोण में प्रायः रोमांटिक हैं। उनका कविता के प्रति अगाध मोह है। इस विषय में उनका कथन है– "कविता ने उसे अत्यधिक पीड़ा के क्षणों में विश्वास और दृढ़ता दी है।"[153]

इन कवियों के अतिरिक्त प्रयोगवाद के अन्तर्गत कुछ ऐसे कवि भी आते हैं जो उस आन्दोलन की टक्कर में प्रपद्यवाद नामक आन्दोलन आरम्भ करते हैं। ये नकेनवादी अथवा प्रपद्यवादी कहलाते हैं। 'नकेन' पटना से प्रकाशित नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश की कविताओं का संकलन था।

149. दूसरा सप्तक–भवानीप्रसाद मिश्र का वक्तव्य पृ. 6
150. वही हरिनारायण का वक्तव्य पृ. 60
151. दूसरा सप्तक–शमशेर बहादुर सिंह का वक्तव्य पृ. 85
152. दूसरा तारसप्तक–रघुवीर सहाय का वक्तव्य पृ. 150
153. वही–धर्मवीर भारती का वक्तव्य पृ. 177

यह दिसम्बर १९५६ में प्रकाशित हुआ। इस वाद में कुछ ऐसे शब्दों के प्रयोग मिलते हैं जिन्हें विश्व की किसी भी डिक्शनरी में नहीं ढूंढा जा सकता जैसे– पस्पशा, अयस्कांत, उन्दुर, चिनकित, श्लीपदी शब्द। प्रयोगशील तार सप्तकीय कवि का प्रयोग वाद बहुत कुछ टी.एस. इलिपट की इस मान्यता का सूचक है। "

"The word 'Experimentation' may be applied and honourably applied to the work of many poets who develop and change in maturity."3

लेकिन नकेनवादी या प्रपद्यवादी जो कि प्रयोग को साध्य ही मानता है काव्य को दुरूहता की ओर ले जाने वाला प्रतीत होता है। ऐसे ही प्रयोग की प्रक्रिया के सम्बन्ध में सी.डे. लीविस महोदय कहते हैं– "यह प्रक्रिया पाठक के लिए कविता को समझने का कार्य कठिन कर देती है, क्योंकि किसी वस्तु से सम्बन्धित उसके उचितभाव कवि के उस विषय से सम्बन्धित भावों से अधिकांशतः भिन्न होते हैं। अतएव पाठक प्रायः अपने को ऐसी स्थिति में पाता है जैसे कि वह कविता न पढ़कर किसी सुप्त व्यक्ति का बड़बड़ाना सुन रहा हो।"[155] ऐसी ही कुछ प्रयोग की प्रक्रिया नकेनवादियों की मानी जा सकती है। यह निश्चय ही अतिवाद से ग्रस्त प्रक्रिया है।

संक्षेप में प्रयोगवाद की दार्शनिक चेतना में कार्लमार्क्स तथा मनोविश्लेषणवाद की धारणाएं मुख्य रूप से दिखाई देती हैं। यौन-वर्जना के मूल में फ्रायड का प्रभाव है। साथ ही टी.एस. इलियट का प्रभाव भी बहुत दूर तक दिखाई देता है। एक दिशा और मिलती है वह है नवलेखन की जहाँ से नई कविता जन्म लेती है। तीसरे सप्तक से ही नई कविता का उन्मेष मानना उचित प्रतीत होता है। प्रयोगवाद पर अति यथार्थवादी दर्शन का रंग भी बहुत अधिक है। रेम्बो मलार्मे तथा वर्लेन से तो यथेष्ट प्रेरणा ली गई है। बिम्ब वाद का शिल्प एजरा पाउंड तथा टी.ई. हल्मे से ग्रहण किया गया है। अंतिम दार्शनिक चेतना है

154. J.S. Elliot quoted by Surendra Mathur in his. आधुनिक हिन्दी साहित्य विश्लेषण और प्रकर्ष पृ. 56

155. This process makes things difficult for the reader because his associations with any given idea or image are probably different from those of the poet and he is likely to feel as prepuzzled and uncomfortable as if he were listaning to some one talking in his sleep. — A hope for poetry—C. Dey, Lewis.

अस्तित्ववादी जहां प्रयोगवादी कवि आदमी (अज्ञेय के शब्दों में व्यक्ति) को केन्द्रस्थ करके उसे महत्त्व प्रदान करता है। नयी कविता की दार्शनिक चेतना-धारा–'नई कविता' का सम्बन्ध प्रयोगवाद से बहुत गहरा है क्योंकि तीसरा सप्तक कुछ नई प्रतिभाओं को लेकर प्रकट हुआ जिनमें प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना सात कवि हैं। प्रयागनारायण की मान्यता है कि ''कविता में दर्शन और अध्यात्म खोजना व्यर्थ है। उसका साध्य तो यथार्थ का तलस्पर्शी सुन्दर चित्रण है। [156] वे यह भी मानते हैं कि ''नई कविता के नाम पर आज जो कुछ लिखा जा रहा है उसके अन्तर्गत बहुत कुछ (मेरी अपनी कविताएं भी) महज बकवास है। [157] कीर्ति चौधरी जो इस सप्तक में दूसरे नम्बर पर हैं अन्तर्विरोध को मानती हुई कहती हैं– ''नई कविता परस्पर विरोधी या विरोधी जान पड़ने वाले गुणों और विशेषताओं का एक अनोखा संगम है। [158] इस सप्तक के तीसरे कवि मदन वात्स्यामन नई कविता की व्याप्ति बहुत दूरान्तर मानते हैं– ''उषा देवता से लेकर गधे तक, नग्न यौनभावना से लेकर स्थूल के अनुत्तेजित चित्रण तक इतना व्यापक विस्तार शायद पहले किसी वाद कविता का न हुआ। [159]

केदारनाथ सिंह एक नवोदित प्रतिभा के रूप में प्रतीत होते हैं। उनके कथन की भंगिमा में मौलिकता है। प्रकृति के माध्यम से अनेक बिम्ब इसके प्रमाण हैं। विदासम्बन्धी गीत से यह सुन्दर बिम्ब प्रशंसनीय है–

धूप तकिये पर पिघलकर
शब्द कोई लिख गई है,
एक तिनका, एक पत्ती, एक गाना–
सांझ मेरे झरोखे की
तीलियों पर रख गई है। [160]

156. तीसरा सप्तक सं. अज्ञेय–प्रयागनारायण त्रिपाठी का आत्म निवेदन पृ. 5
157. वही पृ. 5
158. वही-कीर्ति चौधरी का वक्तव्य पृ. 34
159. तीसरा सप्तक पृ. 51
160. तीसरा सप्तक पृ. 136

कुंवरनारायण पांचवें कविता की परस्परता सिद्ध करते हुए लिखते हैं– "जो बुनियादी जिज्ञासा एक वैज्ञानिक को रूढ़ि की उपेक्षा करके भी, यथार्थ की गूढ़ तहों में पैठते के लिए बाध्य करती है, खोज की वही रोमांचकारी प्रवृत्ति कवि को भी अज्ञात विराट व्यक्तित्व में भटकाती रहती है।[161] वे अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए कहते हैं– "कविता मेरे लिए कोई भावुकता की हाय हाय न होकर यथार्थ के प्रति एक प्रौढ़ प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति है।[162]

छठे कवि विजय देवेनारायण साही आस्थावादी कवि प्रतीत होते हैं। उनकी आस्था जीवन को मुक्ति की ओर अग्रसर करती है। उनके विश्वास के अनुसार दर्द नये निर्माण में सहायक होता है। 'मानवराग' से सम्बन्धित कवि की कल्पना धरती स्थापित करना चाहती है–

हिल उठा कभी जो मस्त मलय भूली निःश्वासों-सा,
झुक-झुक पड़ता मानव का मन सरपत की सांसों सा।
मैं कभी देखता किसी कुसुम को चूम रही तितली
रो-रो उठता सुनसान हृदय बिखरे मधुमासों सर
है नीड़ खोजती, मुक्त कल्पना'
मेरी आकाशी [163]

इस सप्तक के सबसे सशक्त कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हैं। उनकी कविता में ताज़ापन तथा रसमय बौद्धिकता प्रतीत होती है। वे अस्तित्ववाद से प्रभावित हैं। इन तीनों सप्तकों से २९ कवियों को नई कविता के अन्दर पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है लेकिन इनके अतिरिक्त अजित कुमार, डा. जगदीश गुप्त, श्रीकांत वर्मा इत्यादि ने भी नयी कविता को पुष्ट किया है।

नयी कविता के दार्शनिक पक्ष पर जब हम विचार करते हैं तो प्रतीत होता है कि उसमें अति यथार्थवादी दर्शन, बिम्बवादी शिल्प-दर्शन, धनवादी चेतना, मनोविश्लेषणवादी चेतना तथा अस्तित्ववाद मूल में हैं। नये कवि की खोज व्यक्तित्व की खोज ही नहीं आत्म साक्षात्कार की कोशिश भी है। व्यक्ति की

161. तीसरा सप्तक कुंवर नारायण का वक्तव्य पृ. 147
162. वह पृ. 148
163. तीसरा सप्तक पृ. 172-1

उसके पूरे अकेलेपन में गहरी खोज है। प्रायः सभी नये कवियों ने अकेलेपन की अनुभूति को महसूस किया है। ऐसा लगता है कि यह अकेलेपन का भाव आधुनिक युग का स्थायी भाव ही हो गया है। प्रायः यह अकेलापन उस अलगाव या कटाव का बोधक है जो नागरिक बोध प्राप्त करने के पश्चात् आधुनिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति महसूस करताहै। नयी कविता का यह अकेलापन सिसिफस की ऊब और विसंगति का बोधक है अतः इस स्थायीभाव को एक पाश्चात्य दर्शन अर्थात् अस्तित्ववादी चेतना का आधार प्राप्त है। साथी ही इस अकेलेपन को मार्क्स के अलगाव वाले सिद्धांत से भी बल मिला है। अज्ञेय का अकेलापन अस्तित्ववाद से सम्बन्धित है जब कि मुक्तिबोध का अकेलापन मार्क्सवादी अलगाव (Alienation) से जुड़ा हुआ है। अज्ञेय उसे एक प्रकार का आध्यात्मिक आवरण देने की कोशिश करते हैं। वे संघर्ष के जीवंत क्षणों में अपनी अद्वितीयता और गरिमा नहीं छोड़ना चाहते। इसका उदाहरण 'यह दीप अकेला' कविता में मिलता है और मेरी धारणा भी यही है कि यही रूप उनका मौलिक है–

यह दीप अकेला स्नेहभरा
है गर्वभरा मदमाता, पर
इसको पंक्ति को दे दे
यह अद्वितीय : यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित
यह मधु है : स्वयं काल की मौना का युग–संचय
यह गोरस : जीवन कामधेनु का अमृत पूत पय
यह प्रकृत, स्वयंभू ब्रह्म अयुत,
यह सदा द्रवित, चिर जागरूक अनुरक्त-नेत्र
उल्लंब बाहु, यह चिर अखंड अपनाया। [164]

यहाँ विसर्जन लौकिक कर्मशीलता के सन्दर्भ में पंक्ति अर्थात् समष्टि के प्रति है। यद्यपि वे समष्टि के प्रति समर्पित हैं लेकिन फिर भी वे याद रखते हैं कि उनका यह दीप गर्वभरा, मदमाता, अद्वितीय, प्रकृत, स्वंयभू, ब्रहम, अयुत आदि आदि है। यह व्यक्तिवाद का चरमरूप है जिसमें एक तरह का आध्यात्मिक अकेलापन और उस अकेलेपन का गौरव आभासित होता है। यहाँ एक व्यक्ति

164. अज्ञेय–हरी घास पर क्षणभर–यह दीप अकेला कविता

की चेतना के अस्तित्व को जो मनुष्य के रूप में केन्द्रस्थ होकर महत्व का अधिकारी है, तलाश कर लिया गया है। यही सार्त्र के मनुष्य के अस्तित्व का वैभव है।

नागरिक बोध के पीछे दियोनीसस[165] के नगर में आगमन की घरना है। यह आधुनिक बोध का प्रतीक बन गया है क्योंकि उसके रूप में विसंगति, क्रूरता, नग्नता आदि का मूल्यांकन किया जा सकता है, जहां संयम और विधान की दीवारें धराशामी हो गई हैं और प्रचीन सम्बन्ध बदलने लगते हैं। आदमी कलाकार न रहकर कलाकृति बन जाता है। इस देव का विरोधी देव अपोलो है जो विवेक, संयम तथा विधान का आदर्श प्रतीक है। अतः दियोनीसस का कार्य अपोलो की दृष्टि को तोड़ कर त्रासदी को जन्म देना है। इस प्रकार आधुनिकता अपोलो और दियोनीसस में तनाव का परिणाम है। यदि दियोनीसस को विज्ञान का देव मान लिया जाय तो आधुनिक बोध का और भी सार्थक रूप नगर में अवतरित होता है। गिरिजाकुमार माथुर इसे पिशाच-सिद्धि मानते हैं– ''मशीन की महदाकार बाह्य सत्ता ने मनुष्य के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है क्योंकि आज समाज का संस्थागत विकास, राज्य, व्यवस्था–केन्द्र, कार्यालय, बाज़ार मनोरंजन के साधन सभी यंत्र की व्यापक अभिव्यक्ति हैं। इस स्थिति ने आदमी में अकेलेपन और निर्वासन के एक नये अहसास को जन्म दिया है जिसका समाधान अभी किसी दिशा में भी दिखाई नहीं देता है, यह रहेगा इसीलिए असम्पृक्ति और अस्तित्व का अकेलापन भी नहीं मिटेगा। जैसे आदमी ने कोई पिशाच सिद्ध किया हो जिसका उपयोग वह करता है, साथ ही निरन्तर भय-त्रस्त भी रहता है, क्योंकि वह शक्ति उसकी समस्त दैनिक क्षमताओं से बाहर की वस्तु है।''

इस बौद्धिक युग में विज्ञान के देव ने मनुष्य की सत्ता को निरर्थक बना दिया है। निरर्थकता के अहसास से ही अस्तित्व हीनता खोखलापन, अकेलेपन की विवशता, मूल्यहीनता, व्यवस्था की निस्सारता और भय तथा संत्रास की स्थितियां उत्पन्न हुई हैं। नागरिक बोध और अकेलेपन की अनुभूति रघुवीर सहाय में एक गहरा अहसास भर दे तो कोई आश्चर्य नहीं है–

165. दियोनीसस एण्ड दि सिटी–मीनरो के स्पीयरस देखिये–'आधुनिकता और हिन्दी साहित्य' –डा. इन्द्रनाथ मदान पृ. 48

पर मैं इस हाहाहूती नगरी में अकेला हूँ
देह पर जो लता सी लिपटी
आँखों में जितने कामना से निहारा
दुख में जो साथ आये
अपने वक्त पर जिन्हो ने पुकारा जिनके विश्वास पर वचन दिया, पालन किया[166]
जिनका अंतरंग होकर, उनके किसी क्षण में मैं भी जिया
वे सब सुहृद हैं, सर्वत्र सर्वदा है
पर मैं अकेला हूं।[167]

रघुवीर सहाय के मतानुसार आज का युग मूल्यान्धता का है अतः कुछ मूल्यों और कुछ आदर्शों पर चलने वाले व्यक्ति की व्यथा मानसिक अकेलापन पैदा कर देती है। एक रसता (Monotony) भी ऊब पैदा करती है और अकेलेपन के सर्प हमें लील' जाया करते हैं। जगदीश चतुर्वेदी की इस अनुभूति को देखिये–

शाम होगी और हम
बाजारों में निकल जायेंगे
दोस्तों से मिलेंगे
और धीमे मुस्करायेंगे
विद्रूपता, पियेंगे
और गप्पे लड़ायेंगे पर
रात को अंधेरे में
अकेलेपन के सर्य हमें लील जायेंगे।[168]

मुक्तिबोध भी अपनी प्रसिद्ध कविता 'अंधेरे में' के कई स्थलों पर मध्यवर्गीय चेतना के जड़ीभूत होने के कारण व्यक्तिवादी चेतना के प्रखर अनुभव प्रकट करते हैं–

166. गिरिजा कुमार माथुर–देखिये धर्मयुग 5 जून 1966 पृ. 10 'अस्वीकृति का नवोन्मेष, तारसप्तक से अकविता तक नामक निबन्ध
167. रघुवीर सहाय–देखिये धर्मयुग 5 जून 1966
168. जगदीश चतुर्वेदी–इतिहास हन्ता पृ. 66

विचित्र अनुभव।।

जितना मैं लोगों की दाँतों को पार कर
बढ़ता हूँ आगे,
उतना ही पीछे मैं रहता हूँ अकेला
पश्चात्-पद हूँ। [169]

आधुनिक युग के इस अकेलेपन और खोखलेपन से दर्द का जन्म एक व्यापक सन्दर्भ से जोड़ता है। इसके दो रूप हैं– एक रोमांटिक छायाग्रस्त रूप जो आदर्शमूलक है और दूसरा विकृति के रूप में जिसके तीखे नक्श व्यंग्यात्मक हैं। अज्ञेय में पहला रूप दिखाई देती है–

दु:ख सबको मांजता है
और
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किंतु
जिनको मांजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सब को मुक्त रखें। [170]

मुक्तिबोध के काव्य में अज्ञेय के समान ही व्यापक दर्द दिखाई देता है जो आदमी को आदमी से तोड़ता नहीं अपितु जोड़ता है। मुक्तिबोध के काव्य में यह वेदना नवमानवतावादी प्रतीत होती है–

आदमी की दर्द भरी गहरी पुकार सुन
पड़ता है दौड़ जो
आदमी है खूब वह
जैसे तुम भी आदमी बड़े
वैसे मैं भी आदमी हूँ। [171]

इसी प्रकार के रोमानी रंग में व्यापक आदर्श धर्मवीर भारती प्रकट करते हैं। वे दर्द को विराट रूप प्रदान करते हैं–

169. मुक्तिबोध–चाँद का मुँद टेढ़ा है पृ. 300
170. अज्ञेय–हरी घास पर क्षणभर।
171. मुक्तिबोध–चाँद का मुँह टेढ़ा है पृ. 44

जीवन है कुछ इतना विराट इतना व्यापक
उसमें है सबके लिए जगह सबका महत्व
ओ मेजों की कीरों पर माथा रखकर रोनेवाले
यह दर्द तुम्हारा नहीं सिर्फ, यह सबका है
सबने पाया है प्यार, सभी ने खोया है
सबका जीवन है भर
और सब जीते हैं।172

सत्य और मुक्ति की सीमा निर्धारित करते हुए नेमिचन्द्र जैन दुखदायी कटार का रूप प्रस्तुत करते हैं–

सत्य से भागो मत
मुक्ति सचमुच ही कटार है
पैनी दुधारी, अनासक्त
जो पलभर में प्राणों के पटल चीर देती है।173

विजय देव नारायण साही के काव्य में दर्द का व्यंग्यात्मक स्वर उभरा है जहाँ युगानुकूल जीवन की रितता तथा विवशता व्यंग्य है–

जलते माथे पर सूने कुहरे की छाया,
टूटती पसलियों में रीता, गूंजता दर्द,
खाली जेबों में हाथ लिए, सामर्थ्यहीन,
बिल्कुल यूँ खोकर,
हम सभी उतरकर आए हैं इसी घाटी मैं।174

दर्द की व्यंग्यात्मक दिशा अस्वीकृति का बोध कराती है। नयी कविता में मानवीय भविष्य की आशंका, संत्रास पूर्णस्थितियाँ, मशीनी युग की यातनाएँ आदि विकृत को व्यंग्य बना देती हैं। इस सब के मूल में इस युग के सामयिक जीवन में विचार और कर्म का अन्तराल ही कारण है। वर्तमान जीवन की

172. धर्मवीर भारती–आधुनिक हिन्दी साहित्य विश्लेषण और प्रकर्ष सुरेश माथुर पृ. 55 पर उद्घत।
173. नेमिचन्द्र जैन–कल्पना अप्रैल– 1963 पृ. 27
174. विजय देव नारायण साही–संवेदना के बिम्ब–डा. राजनन्द पृ. 68

जटिलता में आदमी थक कर चूर चूर हो गया है और अपने ही परिवेश में बिखर गया है। अपने ही बुने हुए सृजन-जाल में उलझता हुआ सिनीकल हो गया है। अतः वह अपने पर ही व्यंग्य करता है- [175]

मैं जन्मा जब से इस साले ने कष्ट दिया
उल्लू का पट्ठा कन्धे पर है खड़ा हुआ। [176]

कैलाश बाजपेयी आधुनिक युग की विद्रूपता, खोखलापन, तनाव और टूटन के दर्द की अभिव्यक्ति 'दोनों ध्रुवांतों तक' कविता में इस तरह करते हैं–

– दोनों ध्रुवांतों तक फैली हैं विकृतियाँ
– आदमी
एक दूसरे को बदसूरत करते हुए
फाड़ते निचोड़ते हुए
फटते चिरते हुए
अब इस भगदड़ में जो पहले कुचल जाये
(अच्छा है।)
ज़िंदा बने रहने के सारे बहाने
आगे काम नहीं आने
करोड़ों विदेह ज़हर कीटों से
रुंधे हुए सब मुहाने।
एक नई नस रोज तनना शुरू करती है
और टूटने तक चढ़ती चली जाती है
आदमी आदमी के बीच एक कब्र है
और यह कब्र बढ़ती चली जाती है। [177]

सार्त्र की 'नौसियानुभूति' का गहरा रूप वे आगे प्रकट करते हैं–

हर तरफ पिचकी घुमावदार आंतों की
झिल्लियाँ हैं

175. मुक्तिबोध–चाँद का मुँह टेढ़ा है।
176. कैलाश बाजपेयी–दोनों ध्रुवांतों तक–धर्मयुग 9 अक्तूबर 1966 पृ. 23
177. वही

जहाँ सिर्फ उबकाई का शब्द आता है।

इन्हीं स्थितियों के बीच जब आदमी ईश्वर के होने में विश्वास रखता है तो यह कितनी बड़ी विसंगति है। इसी बेहूदगी के विषय में वे कहते हैं कि हर सांस जलती सलाख है, यह एक ठण्डे तेजाब का समुद्र है जहाँ लोग डूबे बिना ही गल जायेंगे–

और वे बैठे हैं जो
बहते हिम खंड पर
वे भी कितने दिन बच पायेंगे।
वे शुभार आँखों में नींद
थोड़े से लोगों की सुविधा है
इस सब के बाद भी रामजी का होना
काफी बेहूदा है।[178]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'युद्ध स्थिति', 'जाता हूँ' जैसी कविताओं में बुद्धिजीवी असन्तोष का स्वर उभरा है। प्रायः उनकी कविताओं में एक संत्रासपूर्ण परिवेश खिंच जाता है और उस परिवेश के वे केन्द्र बन जाते हैं। यहाँ केन्द्रस्थ आदमी टकराता, टूटता और अलगाव में अलग जा गिरता है तथा बदबू और वितृष्णा का मौका झौंका सहता है–

एक बहुत बड़ा झंडा यहाँ लहराता है
मरे हुए इतिहास का एक पन्ना
दौड़ता फड़फड़ाता गाता है,
हर बार उससे टकराकर
मैं रास्ते से अलग जा गिरता हूँ
वितृष्णा और बदबू का एक झौंका
फिर मुझे उठाता है।[179]

अति यथार्थवाद दर्शन में जो अस्वीकृति की भंगिमाएं हैं वे नयी कविता में ही आरम्भ हो गईं थीं। मुक्ति-बोधने 'अंधेरे में' कविता में नागरिक जीवन की

178. वही
179. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना–एक सूनीनाव पृ. 39

सभ्यता का तांडव, खौफनाक कारनामे संस्कृति के नाम पर षड्यंत्र और अधिकारियों, डाकुओं, नेताओं, कवियों का जुलूस नग्न रूप में देख लिया है। अतः वे सब इस द्रष्टा की हत्या करने के लिए दौड़ते हैं। यही सज़ा आज के यथार्थ में एक बुद्धिजीवी को दी जाती है। यह नग्नरूप अति यथार्थवादी दर्शन ही है–

गहन मृतात्माएं इस नगर की
हर रात जुलूस में चलती
परन्तु दिन में
बैठती हैं मिलकर करती हुई षड्यंत्र
विभिन्न दफतरों, कार्यालयों, केन्द्रों में, घरों में।
हाय। हाय। मैंने उन्हें देख लिया नंगा
इसकी मुझे सज़ा मिलेगी।[180]

ऐसे ही नगर में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना लौटना चाहते हैं लेकिन ऐसा नहीं होता क्योंकि कवि को अभी अपनी क़ीमत चुकानी है–

एक शहर
चिपक रहा है मेरे जूतों में
मैं लौटना चाहता हूँ।
यूँ छोड़ने को मैं
ये जूते भी छोड़ सकता हूं
बिलों और बस के टिकटों पर
पैर रखता हुआ
राह मोड़ सकता हूँ,
पर दुकानें बन्द हैं
और मुझे अपनी कीमत चुकानी है।[181]

इसी प्रकार के अति यथार्थवादी दर्शन का रूप रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, डा. जगदीश गुप्त राम दरशमिश्र आदि की कविताओं में मिलता है। आधुनिक

180. मुक्तिबोध–अंधेरे में) चाँद का मुँह टेढ़ा है पृ. 282
181. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना–एक सूनीनाव पृ. 34

सभ्यता के सम्बन्ध में माचवे जी की मर्माहत करने वाली अनुभूति दृष्टव्य हैं--

इस सभ्यता के चाकू के आगे आने में
जानता हूँ चाकू बड़े पैने चमकदार पालिशवाले
ऑटोमेटिक हैंडिल विहीन हैं
जानता हूँ ये बड़े मज़े से
बिना दर्द, बिना हिचकिचाहट के
सदा सद्विवेक को भी समूल मार सकते हैं।[182]

यहाँ संक्षेप में इतना ही कहना अभीष्ट है कि अति यथार्थवादी दर्शन के कारण ही नवमानवता का रूप और लघुमानव का प्रत्यय नई कविता में बहुत ही भास्वर है.। फ्रायड का चिंतन यौन-भावता पर आधारित है। यौन-प्रतीकों का प्रयोग श्रीकांत वर्मा, अज्ञेय, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता इत्यादि कवियों में बहुत अधिक मिलता है। रघुवीर सहाय के आतुर तन की इच्छा है–

यह आतुर तन उसमें धँसता जाये
थक जायें
तेरे कुच मेरे सीने पर धक्धक् करके
फड़कें
फिर रह जायें गुम्फित जंघाएँ
हो जाये वह क्षण जीवन-मरण विशालसखी।[183]

श्रीकान्त वर्मा की दशा तो और भी शोचनीय है। सम्भवतः वह यौन-वर्जना का अतिरूप ही है जो जीवन से मृत्यु तक की यात्रा में पाया जाता है

मैं सड़क पर
गुज़रती हुई
        हरेक
स्त्री के साथ
सोने की इच्छा
        लिए हुए

182. प्रभाकर माचवे–मेपल पृ. 7
183. रघुवीर सहाय–सीढ़ियों पर धूप में पृ. 30

जीवन से मृत्यु
की
ओर
चला जाता
हूँ।[184]

इस प्रकार नवलेसन के सन्दर्भ में नयी कविता को आधुनिक बोध प्रदान करने वाले तीन स्रोत हैं– सार्त्र आदि अस्तित्ववादी चिंतक। ये प्रभाव रूप जॉयस, टी.एस. इलियट लारेंस एज़रा पाउंड, वाल्ट व्हिट मैन , ईट्स आदि के द्वारा नई कविता में आयात हुए हैं। नई कविता ने प्रत्यक्षीकरण के आधार पर सामान्य रूढ़ि से लेकर मोह-भंग, आदमी और समाज की टूटन, पंचवर्षीय योजनाएं और समाजवाद तक की विकृतियों को स्वयं देखा और उसका चित्रण किया है। साठोत्तरी अकविता की दार्शनिक चेतना-धारा–साठोत्तरी कविता में विभिन्न नामों का शोर सुनाई देता है जैसे अकविता, अतिकविता, नवगीत, अस्वीकृत कविता, विद्रोही पीढ़ी–क्रुद्धपीढ़ी, भूखी पीढ़ी या बीट पीढ़ी, ठोस कविता, मशीनी पीढ़ी, ताज़ी कविता, साठोत्तरी कविता, सांप्रतिक कविता, युयुत्सावादी कविता, निर्दिशायामी कविता, अगली कविता, सहज कविता तथा 'सनातन सूर्योदयी नूतनकविता' विचार कविता इत्यादि। नई कविता में ओह-भंग पूर्ण रूप में नहीं हुआ था लेकिन १९६० ई. के पश्चात् मोह-भंग कवियों में यातना-बोध और अस्वीकृति के साथ ही विद्रोह का उभार दिखाई दिया जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति का सामाजिक परिवेश अधिक विकृत हो गया। भविष्य के सपने टूट जाने तथा नपुंसकता के साथ बुझकर एक निरभ्र अंधकार में डूबा प्रतीत होने लगा। इसी बीच अमरीका के बीट कवि एलेन गिंस वर्ग के आगमन से नई पीढ़ी को अधोरी जीवन-दर्शन प्राप्त हो गया। भूखी पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, युयुत्सु पीढ़ी के कवि और यहां तक कि अकविता के प्रवर्तक श्याम परमार तक यौन-विकृति के शिकार होकर 'योनि शरणं गच्छामि' का स्वर सुनाते हैं। यौन-विकृतियों के इस बिन्दु परयेस भी कवि एक ही थैली के चट्टे बट्टे प्रतीत होते हैं–

184. श्रीकान्त वर्मा–माया दर्पण (घर से निकलकर) पृ. 19

स्तनों को रोंदते पागल कदम
खरोंचे जख्म पर
मृत मछलियाँ:
औरतों के कटे-नुचड़े ध्वस्त अंगों पर
शिश्न की परछाइयाँ
एक चौड़ी आँख की घायल गुहा में कैद
भयावह शक्ल वाला
विसंगत, विक्षिप्त नीला पुरुष।[185]

अकविता में विकृत यौन जीवन को बहुत ही अधिक महत्व मिल गया है। वहाँ यौन-वर्जना नहीं है। जगदीश चतुर्वेदी में तो भयंकर और निरंकुश भोगवाद है। इसीप्रकार की विकृति कवि के इस अवतरण को प्रस्तुत करने में है–

रोती हैं विधवाएं
चीखते हैं नाजायज बच्चे
और धूमकेतु-सा बढ़ रहा हूँ मैं
लीलने नगर का सुख
औरतों का कौमार्य
और पलने में सोये बच्चों की माताओं का सतीत्व।[186]

श्रीराम शुल्क को मनोविकृति का शिकार होते हुए वहां देखा जा सकता है जहाँ वे कविता न लिखकर अपने शिश्नवान् होने की अनुभूति सताने लगती है–

मैं भगवान् श्रीराम् नहीं हूँ
मैं शिश्न-वान् श्रीराम हूँ
और मैं तुलसी भी नहीं
कि जिस सीता ने मुझे जन्म नहीं दिया
उसे माता मान लूँ।[187]

श्रीराम शुल्क का विद्रोह केवल यौन-विकृतियों के गन्दे तालाब में डूबता प्रतीत

185. अकविता– 1 पृ. 28 श्याम परमार
186. जगदीश चतुर्वेदी–विजय
187. श्रीराम शुक्ल–पौराणिक उत्तेजना

होता है। उन्हें यह बात अखरती है कि विश्व-सुन्दरी भारतीय रीता फारिया वियतनाम में लड़ रहे अमरीकी सैनिकों के मनोरंजनार्थ जाने को क्यों स्वीकार कर लेती है, सम्भवतः उनके लिए किसी राजनीतिक प्रतिबद्धता कारण बनी हो, हमें इससे क्या सरोकार है। हम तो कविता की दृष्टि से शालीनता के प्रश्न का गला घुटता हुआ महसूस करते हैं–

रीता फारिया
अब
अमेरिका के शिश्न पर
विपरीत रति की मुद्रा में गिरती हुई
भारतीयता का प्रतीक बन गई है
और देश के हथौड़े
अपनी विवशता में लटक गये हैं
अब जब भी हमारा अपमान होता है
हमें महसूस नहीं होता
गुलामों के प्रति अपमान भी कहीं
अपमान हुआ करता है [188]

अकविता के प्रथम चयनकत्ताओं में जगदीश चतुर्वेदी, मुद्रा राक्षस, रवीन्द्र त्यागी और श्याम परमार के नाम प्रमुख हैं। प्रस्तावकों में अतुल भारद्वाज, गंगा प्रसाद विमल, गिरजाकुमार माथुर, प्रभाकर मायने, भारत भूषण अग्रवाल, राजीव सक्सेना और सौमित्र मोहन के नाम प्रमुख हैं। अकविता का कोई सिद्धान्त या दर्शन नहीं है–सिवाय इसके कि ये परम्परा के अति विद्रोही हैं। उनकी सम्पृक्ति या प्रतिबद्धता केवल यौन-विकृति से ही है। अकविता के कवियों को पूरी की पूरी सृष्टि बीमार शरीर की तरह लगती है। ये कवि सड़ांध के शिकार होकर व्यर्थ ही अपने को विद्रोही मान बैठे हैं। अकविता का विद्रोह राजीव सक्सेना की इन पंक्तियों में देखिये–

अज्ञेयम् सर्वदुमेश्वरम् रोग्यवीराय पौण्डलीयटे।
धर्मखाते च अज्ञानपीठे डालरीठे ढोल बजावते।।

188. श्रीराम शुक्ल–प्रतीक प्रश्न

अहो रूपम् वा अहोध्वन्यम् कान्ता शोकम्दुम दबे।
सप्तके प्राथी पारद्वारे जयति जय जय गुट गुट घुटे।। 189

अकवयित्रियों में भी यौन-वर्जना का नाम तक नहीं है। मोना गुलाटी मणिका मोहिनी की कविताएं नग्न सैक्स का चित्रण करती हैं। मोना गुलाटी लिखती हैं–

नरमुण्ड पहने हुए और नाचते हुए और भागते हुए
अपने कंठ को समूचा निगल जाती हूँ।
और अनजान छू लेती हूँ विवस्त्र शिवलिंग
छाती में होता है विकंप और प्रकम्पन से
अर्राता है एक रीछ/जंगलों को ढूंढता हुआ। 190

मणिका मोहिनी जीवित रहने के लिए जानवर बनना जरूरी समझती हैं और प्रतीक्षा करती रहती हैं–

सुबह होने से लेकर दिन डूबने तक
मैं इंतजार करती हूँ रात का
जब हम दोनों एक ही कोने में सिमटकर
एक दूसरे को
कुत्तों की तरह चाटेंगे
विवाह के बाद जिंदा रहने के लिए
जानवर बनना बहुत जरूरी है। 191

अकविता में कोलाज़ की प्रवृत्ति मिलती है–

काफी पी रही है उसकी बीवी... और मैं पी रहा हूँ। लेकिन औंधा लेटा बोला मित्र/खोई हुई रात में चीखता स्सांला कम्बख्त। हिल जाता जिस्म/मगर शहर खो गया। अगरचे रुका नहीं/दाबता-दाबता हो गा पांव/हालांकि हांफता शायद आत्महत्या के सिलैण्डर को मुट्ठियों से छू लिहाफ ओढ़े पड़ा रहा/दुबका/

189. पोयट्री रिव्यू 4 विण्टर 1972-73 पृ. 320
190. मोना गुलाटी अकवितांक पृ. 60
191. मणिका मोहिनी–अकवितांक पृ. 54

कड़वाहट से मिचला मन/मितली/मितली/काली छायाएं बड़े-बड़े पाइप में लेटी रहीं तमाम/शुगर दो चम्मच/नो थैंकस/सन्नाटा झाड़ी में जलता निश्चेष्ट/ख़ामोश/ओह तुम/फुल-फुलकौर/बीस-बाइस की/मोती बे आब जंगला जंगला/कितनी-कितनी कितनी मुद्रा (एं) रामदा/राम छागल/राम पाखी/ [192]

अकविता में नागरिक बोध भी मिलता है लेकिन वहाँ विसंगति का गहरा अहसास न होकर खिलवाड़-सा प्रतीत होता है। गिरिजा कुमार माथुर के शब्दों में–

नगर, रे नगर/तू मच्छ रे मगर/मच्छर रेंगमर/मंछदेर गमर/छिनंदर दर छिनर/तनर, थनर/लगर-भगर/घसर-पसर/जगर मगर/ [193]

'नवगीत' में प्रायः वही नयी कविता के कवि हैं जिनमें रोमानी रंग मिलता है। जैसे धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, डा. जगदीश गुप्त, अज्ञेय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि। बीट और भूखीपीढ़ी–अमरीका के कुछ युवकों (एंग्री यंग मैंन) और भूखी पीढ़ी (हंग्री जेनरेशन) का नेतृत्त्व कैनेथ टाइनेन और कैनेथ अल्साप जैसे विद्रोही नवयुवकों ने किया है। अमेरिका में एलन गिन्सबर्ग और जैक केस्याक ऐसी विद्रोही आत्माएँ हैं जिन्होंने बीटनिक्स के जीवन-दर्शन को इस प्रकार प्रस्तुत कि है– "कोई भी अनुभव-मदिरा-नारी-बीथोवन-रेम्बरां-जाज़-नारी-पहाड़-नारी-बर्फ के खेल-नारी-द्रुत गति-पार्टियां-प्रत्येक वस्तु, हर चीज़ पवित्र है बिना किसी भेद के। प्रत्येक अनुभव के पहले, बाद और इर्द गिर्द नारी अवश्य मौजूद है। [194] यह आन्दोलन १९४९/५० के लगभग शुरू हुआ था। कविता में बीट पीढ़ी के प्रतिनिधि गिन्सबर्ग की प्रसिद्ध कविता 'हाउल' ने हलचल मचा दी। स्वयं कवि के मतानुसार हाउल व्यक्तिगत अनुभव के द्वारा ईश्वर, यौन, ड्रग्स और निरर्थकता का दर्शन है जिसका परिणाम पागलपन, जेल और मृत्यु भी हो सकता है।

इस दर्शन का प्रभाव राज कमल चौधरी पर देखा जा सकता है। उनके साथ जगदीश चतुर्वेदी, नरेन्द्र धीर, रामनरेश पाठक और श्याम परमार हैं।

192. गंगा प्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार–विजय पृ. 12
193. गिरिजा कुमार माथुर–अकविता 4 पृ. 52
194. साहित्य और आधुनिक युग-बोध-देवेन्द इस्सर पृ. 34

मशानी पीढ़ी के सम्पादक निर्भय मल्लिक ने स्पष्ट किया है कि वे प्रगति में विश्वास रखते हैं। इनकी प्रगति के सूचक यौन प्रतीक हैं जिनके आधार पर ये सपाट बयानी करते हैं। सत्यसाची विष्णुशर्मा और विश्वम्भर नाथ उपाध्याय की कविताएं इस पीढ़ी के अन्तर्गत मानी जाती हैं। निर्भय मल्लिक कविता से एक उदाहरण देखिये—

> सुनो दोस्तो/मरने के बाद/मेरी लाश पर वार्यपात कर मूत देना/ और किसी रजस्वला औरत/के कपड़े में लपेट कर/पार्लियामेंट के घर में फैंक देना/कहाँ मिलेगी इतनी बड़ी मुर्दों की भीड़/और इतनी बड़ी कब्रागाह हिन्दुस्तान में। [195]

यहां बीट या भूखीपीढ़ी के विद्रोह-दर्शन का मूंल्यांकन करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है क्योंकि विद्रोह शब्द यहाँ पर भावात्मक दिशा का सूचक नहीं है। उसमें नकार या अस्वीकृति के पीछे नपुंसकता और पलायनवादी प्रवृत्ति मिलती है। मैं काव्य-रूढ़ियों के सख्त विरोध में रहा हूँ अतः विद्रोह को पसन्द करता हूँ लेकिन इस प्रकार के विद्रोह को नहीं जहाँ मनुष्य या व्यक्ति संघर्ष के सामने घुटने झुका दे या शुतुर मुर्ग की भाँति बालू में अपनी आंखें बन्द करले और समझने लगे कि वह शत्रु की दृष्टि से ओझल हो गया है। वैसे भी जब काव्य-रूढ़ियाँ निर्जीव हो जाती हैं तो मादा बन्दर के सामने मृत शिशु को सीने से चिपकाये हुए हम उनसे मोह रखें तो हमें बुद्धिजीवी कहलाने का काई अधिकार नहीं है। जान लीविस ऐसे समय तीन मार्ग सुझाते हैं [196] प्रथम या तो कवि लोग रूढ़ियों को अपना कर ग्रामोफोन की भाँति उन्हें दुहराते जायें, द्वितीय रूप से अपनी रचनात्मक प्रतिभा द्वारा उस मृत या खोखले रूपाकार में नयी शक्ति और नया जीवन भरकर उसका स्वरूप ही बदल दें, तीसरे रूप में विद्रोह कर के पुराने सिक्कों को बिल्कुल अस्वीकार कर दे और नये सिक्कों का

195. श्मशानी पीढ़ी 6 - पृ. 27

196. Poets may set the conventions going with the detachment of a phonograph, and even absent themselves, to all intents and purposes, entirely, or they may exercise creative energy as we have seen, upon dead forms empty shells, and bring about a metamorphosis, or, finally, they may rise up in revolt, repudiate the old coinage altogether and more or less definitely set themselves to minting new.
— Convention and Revolt in Poetry-John hiving lewes (Third Edition) Page 92

निर्माण करें। इन तीनों रूपों में से भूखी और क्रुद्ध पीढ़ी ने किसी भी मार्ग को नहीं अपनाया है क्योंकि वे चलने में विश्वास नहीं करते हैं। अतः उनका जीवन-दर्शन नितांत जड़वादी और प्रगतिशील चेतना का शत्रु है। ताज़ी कविता—ताज़ी कविता आज के यथार्थ और क्षणमुक्त सत्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास है। ताज़ी कविता का कवि एब्सर्ड और अर्थहीनता को अभिजात्य सह-सम्बन्धों को साथ व्यक्त कर अपना उद्देश्य मानता है। लक्ष्मीकांत वर्मा के मतानुसार एब्सर्ड जीवन का क्षेत्र पंचशील से लूप तक फैला हुआ है। पदमघर त्रिपाठी की कविता का उदाहरण देखिये—

वह उठा/और गधे की दुम थाम/बैठ गया पीठपर.../वह लाचार था गति से,/अनुदार (!) था वह—/ बदसूरत मकानों के धब्बे/और खिड़कियों के पार/ बुझती हुई इस्पात की दो आँखें.../वह मुस्करा रहा था खुले आम/गधे की दुम थाम।[197]

साठोत्तरी कविता— सलिल गुप्त के संपादन में कानपुर से 'साठोत्तरी कविता' का संकलन प्रकाशित हुआ। इसका कवि जन-क्रान्ति द्वारा नये मूल्यों की स्थापना के लिए कविता लिखता है। इसमें घुटन और संघर्ष की भावना प्रमुख है। इसके प्रमुख कवि हैं— सुरेश सलिल, बैजनाथ गुप्त, ललित शुक्क, चन्देश गुप्त, सलिल गुप्त और जीवन शुक्ल। ललित शुल्क की कविता 'कालाखून' से एक उदाहरण दिया जाता है—

> अब तो आपन्न सत्वा जनमित्री/जोंकों को जन्म देने लगी है/तुम्हारे वयस्थ डिंभाओं तक की रूपराशि को/निगल जाना चाहते हैं।/तुम्हारा शहर फासले की फसल उगाता है/तुम्हारा गांव अंधेरे की शराब में मस्त है।खेतों हलिहानों की बातचीत/बंजर कोखों की अपनी तक़दीर को/दी हुई लम्बी दरखास्तें/अंधी फाइलों में बंद हैं।[198]

शेष आन्दोलन हवा के झोंके से भी कम प्रभावित करने वाले प्रतीत होते हैं। अतः उनके सम्बन्ध में चर्चा करने से कुछ हाथ नहीं आने का। इतना माना जा सकता है कि नयी कविता के पश्चात् हिन्दी कविता को कोई ऐसा आन्दोलन

197. लक्ष्मीकांत वर्मा : नये प्रतिमान : पुराने निकष पृ. 318
198. ललित शुक्ल—साठोत्तरी कविता सं. सलिलगुप्त पृ. 85

नहीं मिला है जिसका आधार कोई दर्शन या जीवन-दर्शन हो।

निष्कर्ष– हिन्दी कविता के बहुआयामी अध्ययन करने से यह तथ्य उद्घाटित होता है कि द्विवेदी युगीन दार्शनिक चेतना से लेकर नयी कविता और अधिक से अधिक अकविता तक अनेक दार्शनक भूमियाँ मौजूद हैं। प्रत्येक युग की दार्शनक चेतना अपने-अपने रूप में विशिष्ट कहलाई जा सकती है। लेकिन इस अनेकता के बीच एक बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है–वह है कि काव्य का गौरव केवल उसी युग की दार्शनक चेतना को प्राप्त हुआ है जिसका स्वर मानवतावादी रहा है। छायावाद का मानवतावाद केवल आदर्श पर ही आधारित था लेकिन प्रगतिवादी स्वर में वह आदर्श केवल भावुकता तक सीमित न रहकर व्यावहारिक बनता दिखाई देता है। यहाँ काव्य की कला चाहे दब गई हो लेकिन वस्तु विश्व-चेतना से जुड़ जाने के कारण महत्वपूर्ण बन गइहै। 'नयी कविता' में मानवतावाद, विज्ञानऔर तकनीकी आधार पर विश्व व्यापी सन्दर्भों से जुड़ जाता है। अनेक पाश्चात्य प्रभावों को आत्मसात करती हुई नई कविता का नवमानवतावादी स्वर अभिनन्दनीय हो गया है। अतः व्यापक संवेदना और व्यापक रचना-धर्मिता के आधार पर यहाँ जो दार्शनिक चेतना व्यक्त हुई है, उसकी प्रासंगिकता आगे आने वाले युग में भी अक्षुण्ण रहेगी, ऐसा ही विश्वास है। दूसरी नयी कविता की दार्शनिकता के मूल में एक मनोवैज्ञानिक आधार यह मिलता है कि मनुष्य स्वभावतः नये सृजन के लिए सदैव उत्सुक रहता है क्योंकि वह पुरानी ऊबभरी जिंदगी से मुक्त होने का सतत अभिलाषी रहा है तथा प्राचीनता से संलग्न नवीनता में ही अधिक रस का अनुभव करता है। इस धारणा और जीवन-दर्शन के पीछे जान लीविस का प्रभाव कार्य कर रहा है। उनका मत है कि ''हम नये के लिए सदैव उत्सुक तो अवश्य रहते हैं, किंतु हमारा बल इस बात पर भी रहता है कि जो परिचित है, जो बिल्कुल अपना है, उससे भी उस वक्तु का सम्बन्ध अवश्य बना रहे, हम पुराने को तो चाहते ही हैं पर चाहते हैं कि वह किसी न किसी रूप में नया प्रतीत हो।[199] अज्ञेय जी ने इसी नये के दार्शनिक रूप को इस प्रकार व्यक्त किया है– ''कवि नये तथ्यों को उनको नये रागात्मक सम्बन्ध जोड़कर नये सत्यों का रूप दे, उन नये सत्यों को प्रेष्य

199. We are keen for the new but we insist that it establish some connection with what is friendly and our own, we want the old but we want it to see some how new.
— Convention and Revolution in Poetry-John Lewes, Page 63

बनाकर उनका साधारणीकरण करे यही नयी रचना है।[200] नये सत्य के साधारणीकरण से ही उस शाश्वत प्राचीन सत्य की स्वीकृति है जिसमें सामाजिकता की अन्तर्व्याप्ति स्वतः सिद्ध है। यहाँ युगों पुराने संस्कारगत आन्तरिक विरोधों को सुलझाने की चेतना पाई जाती है। नयी कविता ने निश्चय ही कला के केन्द्र में स्थित व्यक्ति को दिशा-व्यापी बनाने का सफल प्रयास किया है। इसी आधार पर मैंने यह कहा है कि नयी कविता के मूल में जो दार्शनिकता विद्यमान है उसी प्रासंगिकता युगान्तर में भी अक्षुण्ण बनी रहेगी।

कश्मीरी कवि अब्दुल अहद नादिम
(अनुसंधित्सु की नज़र में)

(प्रो. भूषणलाल कौल)

हिन्दी-विभाग

कश्मीर विश्वविद्यालय

कश्मीरी काव्य के इतिहास में ना'तगो कवियों की एक स्वस्थ परम्परा देखने को मिलती है। भक्ति काव्य के क्षेत्र में हज़्रत मुहम्मद साहब की छंदोबद्ध स्तुति के हेतु अपनायी गई एक विशिष्ट काव्य विधा को ना'त कहते हैं। मुहम्मद साहब के इश्क़ में दीवाने कवि अपने अटूट विश्वास के आधार पर भिन्न भिन्न प्रकार से श्रद्धा के सुमन उन पर निछावर करते हैं। इश्क़ मुहम्मदी ना'त का मूल प्रतिपाद्य विषय रहता है और भक्त-कवि अपनी अनन्य निष्ठा के आधार पर परम प्रिय के प्रति नतमस्तक हो कर तथा सब कुछ खो कर कुछ पाने के लिये लालायित रहता है।

ना'त वस्तुतः एक भक्ति परक रचना है जिस में भक्त अत्यन्त दास्य भाव से खुदा एवं खुदा के रसूल (ईश दूत) की स्तुति-वन्दना करता है। उन का अनुग्रह प्राप्त करने के हेतु साधना के कठोर पथ का अनुसरण करता हुआ जीवन के महत् उद्देश्य को प्राप्त करने का अभिलाषी रहता है। इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों का सम्मान करता हुआ तथा एकेश्वरवाद पर दृढ़ विश्ंवास व्यक्त करने के साथ साथ भक्त-कवि सात्त्विक कर्म-पथ पर चलकर अपने जन्म को सफल बनाने का प्रयास करता है। कश्मीरी काव्य में इस काव्य-विधा का अपना भव्य-इतिहास है। कश्मीरी भाषा के प्रसिद्ध ना'तगो कवियों में ख्वाजा हबीब उल्लाह नौशहरी, वली उलाह मत्तू, कुतुब-उ-दीन वाइज़, मीर सना उल्लाह क्रीरी, मक़्बूल शाह क्रालवारी, आशिक त्राली, मौलवी सिद्दीक़ उल्लाह

सा'यिल, अब्दुल अहद नादिम, सैफ़-उ-दीन 'आ'रिज़', अब्दुल वहब परे, अज़ीज़ उल्लाह हक़ानी, दरवेश अब्दुल कादिर, गुलाम रसूल नाज़की, तन्हा अंसारी आदि उल्लेखनीय हैं। यहां इस तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि सूफी काव्य से नातिया कलाम भिन्न है और इन दो काव्य-विधाओं को समान मानना अथवा एक दूसरे पर आश्रित समझना उचित नहीं।

अब्दुल अहद नादिम के पूर्वज मीशा साहब रैणावारी के रहने वाले थे। यहीं उन का जन्म स्वर्गीय गुलाम मही–उ-दीन के घर में सन् १८३८ ई० से सन् १८४० ई० के आस पास हुआ है। अत्यन्त अल्पायु में इन के पिता का देहान्त हुआ, विवश माँ अपने दो बेटों अब्दुल अहद और अब्दुल क़ादर के साथ अपने मायिके 'गामर' बाँडी पोरा लौट आई और अपने पिता शैख़ गुलाम रसूल 'शैवा' के आश्रय में रहने लगी। यहीं अब्दुल अहद का बाल्यकालय व्यतीत हुआ। नाना उस इलाक़े के जाने माने कवि थे और फारसी भाषा के ज्ञाता फलतः घर के माहौल का अब्दुल अहद पर गहरा प्रभाव पड़ने लगा। अपने जीवन के प्रौढ़ काल में वे बड़गाम जिला में स्थित ओमपोरा के निकट बट्हिार गाँव में रहने लगे। इनके एक मामा गुलाम अहदम जइद फारसी भाषा एवं साहितय के मर्मज्ञ थे। हिकमत भी जानते थे। अब्दुल अहद के व्यक्तित्त्व पर अपने मामा का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। युवावस्था में ही वे इश्क़ मुहम्मदी के आनन्द सागर में डूब गये और जीवन-पर्यन्त उसी परमानन्द का रसास्वादन करते रहे। नादिम गृहस्थ थे। उन का विधिवत विवाह हुआ था। एक बेटे के अतिरिक्त चार बेटियों ने उन के घर में जन्म लिया। बेटे का नाम था नजम-उ-दीन। 'कुल्लियात नादिम' में डॉ. रशीद नाजकी ने इस बात की ओर स्पष्ट संकेत किया है कि अपने पुत्र नजम-उ-दीन के साथ अब्दुल अहद के अच्छे सम्बन्ध नहीं थे।

नादिम का देहावसान १३२९ हिज्री तदानुसार १९११ ई० में हुआ है। उस समय उनकी आयु ७३ वर्ष मानी गयी है। यदि यह सही है तो नादिम का जन्म १८३८ ई० के आसपास माना जायेगा। जन्म तिथि के विषय में मतभेद है लेकिन देहावसान का वर्ष १३२९ हिज्री है और इस विषय में कोई मतभेद नहीं। नादिम की समस्त रचनाएँ मुक्तक काव्य के अंतर्गत ली जा सकती हैं। सर्वप्रथम जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी की ओर से श्री गुलाम रसूल नाजकी के सम्पादकत्त्व में उनकी रचनाओं का एक छोटा सा प्रतिनिधि संकलन सन्

१९५९ ई० में प्रकाशित हुआ। इस के कुछ वर्ष पश्चात् सन् १९७२ ई० में 'कुल्लियात नादिम' अकादमी की ओर से प्रकाशित हुआ जिस का सम्पादन नादिम के निकटस्थ सम्बन्धी और घाटी के जाने माने लेखक श्री रशीद नाज़की ने किया। इस पुस्तक के प्रथम खण्डे में ११७ पृष्ठों पर कश्मीरी भाषा में नातिया कलाम का इतिहास, नादिम : व्यकितत्व एवं कृतित्व तथा नादिम की काव्य प्रतिभा पर डॉ नाजकी ने विस्तार के साथ लिखा है। सन् १९८५ ई० में अकादमी की ओर से ही इस पुस्तक का दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हुआ। नादिम की समस्त उपलब्ध रचनाओं का संग्रह कुल्लियात में किया गया है। नादिम के काव्य का पहला आकर्षण है–ना'त। शरीयत अर्थात् शरए' मुहम्मदी के सिद्धान्तों का दृढ़ता के साथ पालन करते हुए जीवन के स्वर्णिम प्रभात की अद्‌भुत छवि को पाने के हेतु कवि ईशदूत के प्रति अपने अटूट विश्वास को अभिव्यक्त करता है। एक भक्त-हृदय का निश्छल प्रेम इन रचनाओं में सर्वत्र मुखर हो उठा है। यहाँ इष्ट के प्रति समर्पण की भावना प्रमुख है और भक्त याचक बन कर भगवत्-कृपा एवं ईशदूत के अनुग्रह के हेतु याचनारत दिखाई देता है। नातिया-कलाम में अब्दुल अहद नादिम ने अपने महबूब इलाही पैग़म्बर साहब के असाधारण व्यक्तित्व एवं अद्‌भुत लीलाओं का श्रद्धा सहित चित्रांकन किया है। एक भक्त के रूप में उन्होंने अपने मन-मन्दिर में देवता स्वरूप ईशदूत की प्रतिष्ठा की और उन्हें अपनी श्रद्धा एवं विश्वास का प्रमुख आधार मान कर निरन्तर वे अपनी भावनाओं के सुमन उनके प्रति अर्पित करते रहे। चन्द उदाहरण द्रष्टव्य हैं :–

(१) हज़रत नबीयस ल्गिवय नावस वाव्रस अथि वन नावस ज़ार
उमतुक अहवाल बेति गुज़रावस हयमतुक लोदमुत सोन सरदार
उम्‌तिच शफकत ब्व ति अज़मावस वावस अथि वननावस ज़ार
अ'शि के गरम आबि खोर ज़िनावस च्शिम ज़ि वन्दहस थवि म्य सार
खोशिक लबि सूत्यि अंदि पाद बथरावस वावस अथि वननावस ज़ार
जान-ओ-दिल दोनवय आयित थावस खोश गछि दोनवुनि छुम मोख्तार
फेरिना योरकुन नेरिहम हावस वावस अथिवननावस ज़ार
'संगलाब'–सम्पादक रहमान राही, शफी शौक
प्रकाशक : कश्मीरी-विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर-सन् १९८३ ई० पृ० १३८-३९

(२) अरबी शाहा, मदनी माहा असि गोछ़ गटि मंज़ गाहा चोन
बुथि आ'स वुछ होत रिति दिल खाहा असि गोछ़ गटि मंज़ गाहा चोन
आयि असि मुफलिस बरतल शाहा जाय सा'न्य यति कर पाया सोन
राय छनि बेयि बनि यिछ़ दरगाहा असि गोछ़ गटि मंज़ गाहा चोन
असि खोन शोतोनि सनि सोन चाहा ता'थ मंज़ त्रा'विन क्या ओस लोन
रसि वलि असि हाव खसिनिच राहा असि गोछ़ गटि मंज़ गाहा चोन।
'कुल्लियात ना'दिम'–सम्पादक : रशीद नाज़की
जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन–सन् १९८५ ई०–पृष्ठ १७६–१७७

(३) च़ियी छुक अवल ति च़ियी छुक आदन या नबी पादन वेन्दि होय सर
च़ियी छुक पंतिवथ सथ नाशादन यानबी पादन वैन्द्रि होय सर
कुनि किन यिखना वुनि ओस आदन दिखना दर्शुन छुक रहबर
यिमि होय समिहोय प्यामिहोय पादन या नबी पादन वैन्द्रि होय सर
अथि रोट क्रोरतव असि उफतादन लति मोंजि गा'मित यंच़ अबतर
खा'रा क'रतो गा'र आबादन यानबी पादन वन्दि होय सर
'कुल्लियात ना'दिम'–पृष्ठ १८३-१८४

(४) हज़रत सा'बनिस खासि आसारस लारि दीदारस प्रारि दरगाह
तसकीन बनिना शौकि़ किस नारस लारिदीदारस प्रारि दरगाह
हकि सिन्दि फज़लि बा'च़ यथ शहारस मकि प्यठि रहमत त बरकत क्या
दौलथा यिच ति मा मेलि संसारस लारिदीदारस प्रारि् दरगाह
'कुल्लियात ना'दिम'–पृ. १९१-१९२

अब्दुल अहद नादिम के नातिया कलाम में 'क़ुनाअत नफ़्स' अर्थात् इन्द्रिय-निग्रह को विशेष महत्व दिया गया है। क्षणिक भौतिक आकर्षणों के मायाजाल से मुक्त होकर ही जीव दिव्य-ज्योति का साक्षात्कार करने में सफल होता है। कुछ पाने के हेतु सब कुछ खोना अर्थात् अपने आप को पहचानना नितान्तावश्यक है। नुन्द ऋषि के 'श्रुकों में भी आत्म निग्रह पर विशेष बल दिया गया है और सम्पूर्ण भक्ति-काव्य में सांसारिक माया-मोह से मुक्त होकर मूल तत्त को जानने पहचानने का प्रयास किया गया है, वही तो साधना है चाहे उस की पद्धतियाँ भिन्न भिन्न ही क्यों न हो। गृहस्थ जीवन के उत्तरदायित्व को

निबाहते हुए भी नादिम कीचड़ में कमल के समान थे। लोभ, मोह, माया एवं अहंकार साधना-पथ के विघ्न हैं जिन्हें पार करके ही साधक समभूमि के निकट पहुँचने में सफल हो जाता है। ऐसी आनन्द-भूमि जहां अपने और पराये का भेदभाव मिट जाता है और ज़िन्दगी के वीराने में बसंत का सौन्दर्य खिल उठता है। नादिम के नातिया कलाम में 'कनाअत नफ़्स' से सम्बन्धित चन्द उदाहरण देखने योग्य हैं :-

(१) या' नबी वात असि दादि फरियादन
अस‍ि फोर पनिनुई नफ़्स का'फिर
डा'लि इबलीसन गा'लि बे दादन
या नबी पादन वन्दि होय सर 'कुल्लियात नादिम'–पृ. १८४

(२) ना'दिम छु वोलमुत नफ़्सिक दामन
अथि रोट करतस नति गछ़ि ख्वार
सख़ ओन आ'जिज़ नफ़्सि बदकामन
रोट चोन दामन बोज़ सा'नि ज़ार
'कुल्लियात नादिम'--पृ. १८१

(३) नफ़्सन करिना'व सख़्त इगवाहा
गरकुलि दुश्मन असि कर ज़ोन
कोहस तल ज़न ला'गिन काहा
असि गोछ़ गटि मंज़ गाहा चोन।
'कुल्लियात नादिम'–पृ. १७७

नादिम के नातिया कलाम की एक और विशेषता यह है कि इन्होंने अधिकांश रचनाओं को लोक गीतों की शैली में प्रस्तुत किया है कश्मीरी लोक गीतों में 'वनवुन' का अपना विशेष महत्व रहा है। इसी 'वनवुन' शैली को अपना कर वस्तुतः नादिम अपनी रचनाओं को जन मानस के बहुत क़रीब लाने में पूर्ण सफल हुए हैं। 'वनवुन' स्त्रियों के गीत हैं और नादिम ने अपने नातिया कलाम से इन गीतों को गौरवान्वित किया है। इश्क़ मुहम्मदी के जोश से ये लोक-गीत न केवल महिमा मंडित हुए अपितु जनजन के कंठहार बन गये। श्री गुलाम रसूल नाज़की का यह कथन सही है कि नादिम ने कश्मीरी वनवुन को इबादत अर्थात् उपासना या आराधना का रूप प्रदान किया है वस्तुतः ना'त भक्ति प्रधान गीति काव्य का ही एक रूप है। नादिम ने अपने नातिया कलाम में अलौकिक एवं ईशदूत के प्रति अनन्य प्रेम और भक्ति के साथ लोक संगीत.को मिला कर अमृत

रस की त्रिवेणी प्रवाहित की है। ऐसा अद्‌भुत संयोग बहुत कम कवियों की रचनाओं में देखने को मिलता है। 'वनवुन' को ना'त के साथ मिलाकर उन्होंने भक्ति परक गीतों की सृष्टि की है।१ यहां दो उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं. :—

(१) मकि किस टा'ठिस मदनी लालस सोज़ि ब्व इस्तकबालस जान
दियि ना दरशुन यियी ना सालस सोज़ि ब्व इस्तकबालस जान
क्या गोसि गोमतस माहतिम सालस ज़ॉह छुनि गटि मंज़ गाह हावान
नूरि निश दूरयर कोताह चालस सोज़ि ब्व इस्तकबालस जान।
'कुल्लियात ना'दिम–पृ. १७९-१८०

(२) या नबी ना'त चोन कोर आगाज़ै ताज़ै ताज़ै वन वोय
हूरि द्रायि पा'रिथ नूरि पेशवाज़ै वनवास आयैय चेयि हर सू
सा'ल कर अज़ छुक मा'लि महराज़ै ताज़ै ताज़ै वन वोय
लोलिकिस सोदरस लूबि जहाज़ै होल चलि तेलि यलि तोर वातोय
लोल आव असि त्रा'व वा'थि दरवाज़ै ताज़ै ताज़ै वन वोय
'कुल्लियात नादिम'–पृ. १९४-१९६

नादिम ने मुनाजात भी लिखे हैं। मुनाजात में ईश-प्रार्थना को काव्य के प्रतिपाद्य-विषय के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह एक ऐसा स्तुतिगान है जिस में साधक ईश कृपा की प्राप्ति के हेतु प्रार्थना रत रहता है। २ यहाँ कवि सर्वप्रथम अपने इष्ट के महात्म्य के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है, वह मुक्तकंठ से इष्ट देव के प्रभुत्व का महिमा गान करता है और स्तुतिगायन के साथ साथ दैन्य भाव से प्रेरित कृतज्ञता भी व्यक्त करता है। अन्त में ईश-कृपा एवं अनुग्रह का पात्र बन कर वह अपने साधना-पथ के अन्धकार को मिटाना चाहता है। भक्त उस अलौकिक शक्ति के सहारे अपनी जीवन-नौका को इस भवसागर के भँवर से बाहर निकाल कर उस पार लगाना चाहता है। वस्तुतः मुनाजात में कवि याचक बनकर भगवत् कृपा का प्रासाद प्राप्त करने का अभिलाषी रहता है। नादिम इष्ट के सम्मुख नतमस्तक होकर नूरे इलाही की अद्‌भुत ज्योति से अपने हृदय के तमसान्धकार को मिटाना चाहता है। एक बार फिर वह अपने आप को

1. 'इनके काव्य का प्रमुख क्षेत्र है—वनवुन शैली में ना'त लेखना इसी कारण ये कश्मीर के घर घर में पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं।'
का'शिर अब्दुक तवारीख—नाजी मुबवर, शफ़ी शौक पृ. 107

2. 'उर्दू-हिन्दी शब्दकोश'—प्रकाशक : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रयाग) संकलन कर्त्ता : मुहम्मद मुस्तफ़ा खाँ 'मद्दाह'
तृतीय संस्करण-सन् 1977ई० पृ. 523

पहचानने का प्रयास करता हुआ साधनारत दिखाई देता है। इस सन्दर्भ में नादिम के काव्य से तीन उदाहरण देखने योग्य हैं :–

(१) इला'ही चा'न्य रहमत बे निहायत
म्य ज़हमत कास्तम करतम अनायत
इला'ही छुस ब्व चोनुई बन्दि बद कार
ब्व चोनुई छुस च्य म्योनुई यीतनय आर
इला'ही बोज़तम फरियादि ज़ा'री,
करन पूज़िश हरन छुम अश्क जा'री।
'कुलियात नादिम'–पृ. १२५/१२६

(२) बहारस आम् हारस पोह नज़दीक
कोहस प्यठ लोसन्स छुम दोह नज़दीक
क़बर छम नाद लायान ग़ा'फिलो पख
तबर छम तालि प्यठ मोतिन बिलाशक
इला'ही बन्दि छुस दरमन्दि चोनुई
ब्व आंसी छुस चि़छुख बखशन्दि म्योनुई।
'कुल्लियात नादिम'–पृ. १२४

(३) ख़बर रूज़िम न कर कस्ताम गेल्योम
परस गेल्योम गरस ती ताम म्येल्योम
का'रिम लूकन स्यठाह क्या आ'ब जूई
तमी आ'बन क'रिम बे आ'बिरोई
वनिम बोहतान क'स्यम गा'बिच़ फोरूमती
यि बद कोंछुम बेयिस पानस सोरूम ती
'कुल्लियात नादिम'–पृ. १२९

फारसी भाषा में काव्य की एक विधा शह्र आशोब कहलाती है जिस में कवि अपने समकालीन जीवन की विकृतियों का स्पष्ट अथवा व्यंग्यात्मक चित्रण करता है। इस प्रकार की कविता में कुशासन के कुचक्रों से त्रस्त जनता की दीनहीन दशा का सांकेतिक रूप में उल्लेख किया जाता है। सामाजिक और राजनीतिक शोषण से त्रस्त जनता पथ भ्रष्ट नेताओं के कुचक्रों में फंस कर उन के हवस अर्थात् भौतिक भूख का शिकार बन जाती है। कवि जीवन के इस

बीभत्स यथार्थ में कुछ क्षण जी कर त्रस्त हो उठता है और व्यंग्य का सहारा लेकर तथा मुलम्मे का आवरण चीर कर समकालीन ज़िन्दगी की कटु हक़ीक़तों से हमें परिचित कराता है। आधुनिक शब्दावली में जिसे हम युग-बोध कहते हैं उस का सही रूप हमें इन रचनाओं में देखने को मिलता है। अज्ञान, अन्धविश्वास एवं आर्थिक विपन्नता के तमसान्धकार में सामान्य जन-जीवन किस प्रकार मलिन हो जाता है--इस कटु-सत्य की सांकेतिक अभिव्यक्ति इन रचनाओं के द्वारा होती है। देखा जाए तो इन शह्र-आशोब रचनाओं का काव्य में ऐतिहासिक महत्त्व रहता है। इस प्रकार की रचनाएँ एक युग-विशेष का सम्यक् बोध कराने में, चाहे वह कितना ही करुणाजनक एवं संकट ग्रस्त क्यों न हो, महत्वपूर्ण भूमिका निबाहती हैं।

ना'त गो नादिम के रचना संसार में इस प्रकार की व्यंग्य रचनाओं का अपना विशेष महत्त्व रहा है। निस्सन्देह वे अपने युग के प्रति सजग एवं सचेत थे। उन्होंने ज़िन्दगी को बहुत क़रीब से देखा और समझा था यही कारण है कि वे अपने युग सत्य के प्रतिकाफ़ी इमानदार रहे हैं। उन्होंने 'तर्के दुनिया' की बात न कह कर 'एहसास-दुनिया' की बात को ज़्यादा महत्त्वपूर्ण समझा अतः किसी अविश्वासनीय स्वर्ग की बात न कह कर वे भौतिक जीवन की विकृतियों पर निरन्तर प्रहार करते हुए दिखाई देते हैं। इस सन्दर्भ में दो उदाहरण देखने योग्य हैं :-

(१) आ'लिम वख़्तकि ता'लिब छि क्यारन
ज़ा'लिम ज़न छी, रुशवत खार
तमहन वुनि वाज बीनादारन
ति ज़ि ओस तेलि कुफारन आर।
केहँ क'रि वा'सिल अ'लमिक यारन
केंछ़न अ'लिम खोत खरि सुन्द बार
केहँ बुछि अ'लमिक कालिशाह मारन
ति ज़ि ओस तेलि कुफारन आर।
'कुल्लियात नादिम'-पृ. २०४/२०५

(२) खासो आम सा'री दुनिया गारन
इसराफ़ चा़रन बेशुमार

'बोछि हेत हून्य ज़न पेयि मोरदारन
ति ज़ि ओस तेलि कुफारन आर
वनि हा बेयि क्यँह तथ छुस थारन
आम लूकन हिन्द बद किरदार
हदि रठ ज़्यव पानि आदि मा मारन
ति ज़ि ओस तेलि कुफारन आर।
'कुल्लियात नादिम'—पृ. २०४/२०५

इस में सन्देह नहीं कि नादिम की अभिव्यक्ति पर फारसी भाषा का ज़बरदस्त प्रभाव देखने को मिलता है। यहाँ स्थिति वही है जो परमानन्द के काव्य में संस्कृत गर्भित कश्मीरी भाषा के प्रयोग के कारण उत्पन्न हुई है। नादिम ने फारसी के साथ साथ अरबी भाषा का भी खुल कर प्रयोग किया है फलतः उन के काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष लोक-भाषा से भिन्न एक विशिष्ट वर्ग एवं सम्प्रदाय तक सीमित रह गया। सम्भव है कि यह युगीन परिस्थितियों का परिणाम हो अथवा फारसी के प्रभुत्व की मजबूरी हो या यह भी कहा जा सकता है कि कश्मीरी भाषा जो उस युग में एक अर्ध विकसित बोली के रूप में प्रचलित थी, नादिम को पर्यायवाची शब्दावली प्रदान करने में असमर्थ थी इस विषय में कई कारण प्रस्तुत किये जा सकतेहैं लेकिन इस हक़ीक़त को झुठलाया नहीं जा सकता है कि नादिम अपनी अधिकांश रचनाओं में फारसी और अरबी के माध्यम से कश्मीरी भाषा का व्यवहार करते हैं जिसे समझने के लिये फारसी और अरबी की जानकारी होना नितान्तावश्यक है। काश! नादिम शुद्ध एवं सहज लोक-भाषा का व्यवहार कर पाते, तब आज उनकी रचनाओं का अभिव्यक्ति-पक्ष कितना सशक्त एवं आकर्षक दिखाई देता। आश्चर्य इस बात का है कि न केवल शब्दों को अपितु असंख्य वाक्यांशों एवं शब्द-खण्डों को भी उधार लेने के लिए वे विवश दिखाई देते हैं।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि २०वीं शताब्दी के पहले दशक तक नादिम एक विशिष्ट काव्य-विधा को लेकर कश्मीरी भाषा के रचना-जगत में सक्रिय दिखाई देते हैं। कश्मीरी भक्ति-काव्य के इतिहास में विशेष कर ना'त एवं मुनाजात के क्षेत्र में अब्दुल अहद नादिम का योग दान चिर स्मरणीय रहेगा। दीने-इस्लाम के सिद्धांतों के प्रति दृढ़ता के साथ पूर्ण निष्ठा रखते हुए उन्होंने कश्मीरी काव्य-जगत में वह अमृत धारा पूरे वेग के साथ प्रवाहित की जिस के

छलकते रस कणों से आज के कम्प्यूटर-युग का दग्ध-हृदय मानव अपनी ज़िन्दगी के शुष्क रेगिस्तान को पुनः सिक्त करना चाता है। आंज के बौद्धिक रस्साकशी के युग में यही तो प्राणदायिनी शक्ति है। आज मनुष्य फिर शान्ति की तलाश में दर दर भटक रहा है। अलौकिक और अद्‌भुत को खोज रहा है अपने आप को एक बार फिर पहचानने का प्रयास कर रहा है। ऐसी स्थिति में भक्ति काव्य की भूमिका स्वयं सिद्ध है। अब्दुल अहद नादिम ने कल जो अमृत धारा प्रवाहित की वह आज के तपते जीवन को सिक्त करते हुए अवश्य कल भी प्रवाहमान दिखाई देगी, इस में कोई सन्देह नहीं।

दूर त्रा'वि वाराह दौरि अयामन
पूर छुनि रूदमुत कां'सि संसार
गटि मंज़ गुमराह गा'मित छि शामन
रोट चोन दामन बोज़ सांनि ज़ार
ख़बरा ह्यनि गछ़ि बे आरामन
नंज़रा दिति असि छी बेमार
त्रा'विथ ब्यूठुक कति असि खामन
रोट चोन दामन बोज़ सा'न्य ज़ार।

'कुल्लियात नादिम'—पृ. १८१

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में युग-चिंतन

– डॉ. सोमनाथ कौल
रीडर, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

एक साहित्यकार जिस युग तथा जिन परिस्थितियों में रहता है, अपनी रचनाओं के माध्यम से वह उनका चित्रण करता है। जिस प्रकार परिस्थितियाँ एक-सी नहीं रहतीं, उसी प्रकार लेखक का दृष्टिकोण उनके प्रति एक-सा रह नहीं पाता है। समय-समय पर लेखकों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन आए हैं। वैसे ऐसा होना भी चाहिए क्योंकि परिवर्तनशीलता जीवन की तरह साहित्य की भी प्राण-शक्ति है। हिन्दी साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास इस बात की गवाही देता है कि बदलती युगीन परिस्थितियों ने उसे प्रभावित किया है। युगीन परिस्थितियों के प्रभाव से हमारे सोचने-समझने तथा चिन्तन की भावभूमि खड़ी होती है। एक साहित्यकार अपनी कृति के माध्यम से जब समय की परिस्थितियों तथा तद्जनित लोगों का चिंतन हमारे सामने रखता है, वह किसी-न-किसी समसामयिक 'दर्शन' या चिंतन-पद्धति से प्रभावित होता है या हो सकता है जोकि उसको साहित्य-सृजन के लिए प्रेरित कर सकते हैं। इस संदर्भ में कथा-सम्राट 'प्रेमचन्द' को उद्धृत किया जा सकता है। प्रेमचन्द ने अपने जीवन-काल में बहुत से उतार-चढ़ाव अनुभव किये थे। इस कथन की पुष्टि प्रायः उनके सम्पूर्ण साहित्य से होती है। उनका समय आदर्शवादी युग था अतः लेखकीय यथार्थपरक दृष्टि होने के बावजूद उनका कहानी-साहित्य आदर्शवाद के कुहासे से मुक्त नहीं रहा है। कहना न होगा कि आदर्शवादी दृष्टि रखने के कारण प्रेमचन्द को 'सुधारवादी' होने का आरोप लगाया जाता है, जिससे इनकी अधिकांश कहानियां का कलात्मक स्तर गिर गया है। इसका कारण यह है कि सुधारवादी दृष्टि से लेखक की लेखनी स्वतंत्र रूप से न चलकर आदर्शों के 'फ़ार्मूलाओं' में क़ैद होकर रह जाती है। प्रेमचन्द को अपने जीवन के उत्तर-काल में इस बात का अहसास हुआ होगा। 'कफ़न' 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी इनी-गिनी कहानियाँ इसी अहसास के परिणाम की कहानियाँ लगती हैं।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कथा-वाटिका को यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, अज्ञेय तथा दूसरे महानुभाव पल्लविन्न एवं पुष्पित करने लगे। यह वह युग था जबकि भारत अन्य देशों की तरह पाश्चात्य दर्शन से प्रभावित हो रहा था, जिसका प्रमाण इन कहानी-लेखकों का साहित्य है। दूसरे शब्दों में, हिन्दी-कहानी के जगत् में नवीन दिशाओं के अंकुर इसी काल से निकलने आरम्भ हुए। एक ओर 'फ्रायड' तथा दूसरे मनोविश्लेषणात्मक चिन्तकों के प्रभाव से इलाचन्द्र जोशी, तथा दूसरे कहानीकार ऐसे पात्रों का निर्माण करने लगे जो अपने में ही उतरते-फिरते मन की गुत्थियों को सुलझाने में व्यस्त दिखाई देते हैं। दूसरी ओर मार्क्स तथा दूसरे लेखकों की मान्यताओं से प्रभावित होकर 'यशपाल' तथा दूसरे मार्क्सवादी कहानीकारों ने प्रगतिवादी कहानियाँ लिखीं। निस्संदेह प्रेमचन्दोत्तर कहानीकारों ने भी यथार्थ के धरातल पर ही अपनी कहानियों का निर्माण किया। किन्तु ये कहानीकार अपने ही 'वाद' या 'सिद्धान्त' की रक्षा इस सीमा तक करने लगे कि उनकी रचनाओं ने 'साहित्य-प्रसार– की अपेक्षा 'सिद्धान्त-प्रचार' किया, ऐसा इन कहानियों पर आरोप लगाया जाता है। इन सीमाओं के बावजूद, इन व्यतीत कहानीकारों को 'कहानी' लिखने की प्रेरणा जीवन के विस्तृत क्षेत्र से ही मिली। यदि इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-कहानी देखी जाय, तो कह सकते हैं कि 'नयी कहानी' एवं 'साठोत्तरी कहानी' ज़िन्दगी के बीच,आसपास और उसी के समांतर चलने वाली कहानी है। इसका कारण यह है कि आज़ादी के इन चालीस वर्षों में हमारा कहानी-लेखक सामान्य आदमी के साथ-साथ उसका सहयात्री भी रहा है। उसने अपनी आंखों से जीवन की विषमताओं को जैसे देखा, समाज में व्यक्ति-व्यक्ति के बदलते रिश्तों को जैसे महसूस किया, विगत मूल्यों की असारता को जैसे अनुभव किया, जीवन की संश्लिष्ट भीड़ में एक व्यक्ति कैसे अपने आपको अकेला एवं असहाय महसूस करने लगा आदि .... स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-कहानी-लेखक ने ईमानदारी से इन उपरोक्त बातों का चित्रण सूक्ष्म अनुभव के धरातल पर तटस्थ दृष्टि से किया है। पारिभाषिक शब्दावली में इसी को लेखकीय तटस्थता एवं अनुभव की प्रामाणिकता कहते हैं।

कहना न होगा कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हमारी परिस्थितियों (राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक ....) में द्रुतगति से आमूलागू परिवर्तन

आये, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे सोचने-समझने तथा चिंतन-प्रणाली पर पड़ा। स्पष्ट है जब सोचने-समझने तथा चिंतन करने में द्रुतगति से परिवर्तन आये, तब स्थापित नैतिक मूल्यों, मनुष्य-मनुष्य के रिश्तों, समाज एवं राष्ट्र के प्रति दृष्टिकोण तथा अन्य बातों में परिवर्तन आना स्वाभाविक था तथा विगत मूल्यों एवं आदर्शों की असारता सिद्ध होना भी सीधी बात थी। कहने का आशय यह है कि स्वायंत्र्योत्तर कहानी के चिंतन की विभिन्न दिशायें हैं, जिन्हें निम्नलिखित, शीर्षकों, के अन्तर्गत विभाजित करके देखा जा सकता है :–

१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-कहानी में राजनैतिक चिंतन
२. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-कहानी में सामाजिक बोध एवं नवीन जीवन-मूल्य
२. (अ)–स्वातंत्र्योत्तर कहानी में समाज के प्रति अनास्था
२. (आ)–स्वातंत्र्योत्तर कहानी : परंपरागत मूल्यों का विघटन एवं नवीन जीवन-मूल्य
३. मूल्यहीनता की स्थिति
४. स्वातंत्र्योत्तर कहानी : वैयक्तिक चिन्तन
५. नयी कहानी में वैयक्तिक-बोध
६. साठोत्तरी हिन्दी कहानी में वैयक्तिक-बोध आदि।

१. राजनैतिक चिंतन :

आज़ादी से पूर्व एक सामान्य भारतीय के मानस-पटल पर 'स्वतंत्र भारत की जो तस्वीर परिकल्पित थी, वह उसकें 'यथार्थ भारत' से किसी भी तरह पूरी नहीं बैठ पाती थी। उसने अपने 'स्वतंत्र स्वर्णिम भारत' में आपाधापी, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, हड़तालें, षड्यंत्र, साम्प्रदायिक दंगे, सत्तात्मक भ्रष्टाचार .... आदि देखा। अतः एक सामान्य जन तक भयानक मोह-भंग की स्थिति से गुज़रा। इस संदर्भ में हृदय लानी का यह कथन उद्धृत किया जा सकता है : "मैंने जब होश संभाला, तब अपना यह देश, भारत, कानूनी तौर पर आज़ाद हो चुका था। अंग्रेज़ जा चुके थे। तब यह जानने का मन हुआ, कि गुलाम भारत कैसा रहा होगा.... बुजुर्गों ने सन् सैंतालीस के दिल दहला देने वाले किस्से (!) सुनाये और यह भी कि गेहूँ एक रुपये में बीस सेर मिलता था। तब मन में कभी-कभी प्रश्न उठता कि क्या गुलाम भारत आज़ाद भारत से अच्छा था ? यह उन्नीस सेर गेहूँ कहाँ

चला गया ? यह अन्तर बाद में समझ आया कि आजादी के बाद मुट्ठी भर भारतीयों ने, जो सन् सैंतालीस तक देश-भक्त थे, अपनी देशभक्ति को सूद सहित भुना लेने के लिए, अपने ही देश और देश-वासियों को दोनों हाथों से लूटना शुरू कर दिया। देश के सभी आर्थिक स्रोतों के मुंहों पर इन्हीं चन्द लोगों ने अपनी-अपनी मश्कों के मुंह लगा दिये ......"[1]

इन परिस्थितियों में रहते हुए आज का सामान्य जन 'राष्ट्रीयता', 'स्वतंत्रता तथा इसकी रक्षा' 'लोकतंत्र' जैसे शब्दों का महत्व क्या समझे या जाने। उसके चारों ओर लूट-खसोट, महंगाई, बेईमानी, भुखमरी और अकाल ने पैर जमा लिये हैं। वह प्रकृत देश में जी रहा है जहाँ शक्ति ही एकमात्र अधिकार है। जिस प्रकार 'थॉमस हॉब्स' के 'प्रकृत देश' (स्टेट ऑफ नेचर) में बलिष्ट आदमी बलहीन व्यक्ति को निगलने का प्रयत्न करता हुआ दिखाया गया है, उसी प्रकार अपने स्वतंत्र भारत में एक भारतीय को अपना अस्तित्व हर लिहाज़ से अरक्षित प्रतीत होने लगा। जहाँ अपना अस्तित्व ही 'अस्तित्वहीन' हो, वहाँ देश के बड़े-बड़े हितों को कौन देखे, जहाँ अर्थ-व्यवस्था का कोई नियम नहीं, दिन-रात काम करने वालों को दो जून की रोटी उपलब्ध नहीं, उनका राष्ट्रीय एवं राजनैतिक चिन्तन क्या हो सकता है। एक सामान्य भारतीय निजी समस्याओं में इतना उलझ गया है कि वह अपने आपको यथार्थ परिवेश से कटा हुआ पाता है जो कि अपने ही अस्तित्व की रक्षा करने के लिए दत्तचित है। वह 'रक्तजीवी'[2] है, जो सचमुच अपना लहू बेचकर जेबखर्च के लिये कई रुपये जुटाने का प्रबन्ध करता है। एक सामान्य भारतीय को वर्तमान पूर्णतया अंधकारमय दिखता है। अपनी सामाजिक एवं राजनैतिक अव्यवस्थाओं के प्रति उसमें क्रान्ति है, किन्तु है खोखली। इसलिए वह तीखे व्यंग्य प्रहार करने के सिवा और कुछ नहीं कर पाता। सरकार आज के युवकों की योग्यता को उपेक्षित करके ऐसे लोगों को बड़े-बड़े पदों पर रखती है, जो अयोग्य हैं और इस प्रकार योग्य लोगों को आत्महत्या करनी पड़ती है। बे बेकारी के दिनों में कवितायें लिखकर सिसक रहे हैं। उनकी जबान पर सरकारी ताला लगा है और 'लाल सिग्नल[3] के सिवा उनको कुछ दिखाई नहीं देता है। स्पष्ट है कि

1. हृदय लानी : वक्तव्य-दे. सारिका, फरवरी 1973: पृ. 14
2. सारिका : नवंबर, 1972: संपादक कमलेश्वर, पृ. 8
3. लाल सिग्नल : असगर वजाह दे. सारिका, नवंबर 72 पृ. 84

ऐसी स्थिति में स्वतंत्र भारत के स्वतंत्र नागरिक का राजनैतिक चिन्तन क्या हो सकता है। वह आदर्शवादी होकर राष्ट्र के महान् हितों के लिए मर-मिटने के लिए तय्यार नहीं हो सकता। मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' में उसके विगत मूल्यों की असारता प्रमाणित हो चुकी है। उसकी राष्ट्रीय-भावना शून्य के बराबर हो गई है। इधर जिन नेताओं के हाथ में सत्ता की बागडोर है, देश का वर्तमान जिनके हवाले है, वे स्वयं क्या करते हैं और अपने लोगों को क्या करवाते हैं या करवाना चाहते हैं, ये बातें किसी से गुप्त नहीं हैं। उनके कथन में 'चाहिए' शब्द का प्राधान्य तो है, किन्तु उसका व्यावहारिक पक्ष 'शून्य' के समान है। आज़ादी से पूर्व जो राजनीतिज्ञ या नेता आदर्शों की बात करते थे, वे उन्हें पूरा करके ही दम लेते थे, किन्तु अब उन की बात ही दूसरी है। दूधनाथ सिंह की कहानी 'दुःस्वप्न' के माध्यम से उन्होंने प्रमाणित किया है कि राजनैतिक आदर्श निरर्थक है। 'गिरिराज किशोर' की कहानी 'पेपरवेट' के माध्यम से राजनैतिक संस्थाएं तो होती हैं किन्तु उनका अस्तित्व अपने निजी स्वार्थों एवं हितों के लिए होता है। अतः आजकी 'प्रजासत्ता' (फणीश्वर नाथ रेणु) 'प्रजासत्ता' नहीं, 'झुंड-सत्ता' है।

अब राजनीति का क्षेत्र केवल राजनीतिज्ञों तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। इसमें वे लोग भी सम्मिलित हो सकते हैं जिनमें सत्तात्मक अधिकार है। कहना न होगा कि सत्तात्मक अधिकार वाले लोगों का एक अलग समाज बना है, जोकि 'भाई-भतीजावाद' के सहारे उच्च पदों पर जा पहुंचते हैं। इसलिए इनमें से अधिकांश लोग 'राजनीतिज्ञों', 'नेताओं' तथा ऐसे ही दूसरे लोगों के 'एजेन्ट' होते हैं। अपने स्वार्थों की रक्षा करने के लिए तथा अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए ये निकृष्ट से निकृष्टतम कार्य करने करने के लिए तय्यार होते हैं। अतः प्रशासन के सभी भागों में आपाधापी एवं भ्रष्टाचार के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता है। ये लोग लोकहित की व्यापक भावनाओं से तटस्थ हैं। इसका परिणाम यह निकलता है कि आजका आदमी, ''एक शानदार अतीत कुत्ते की मौत मर रहा है, उसी में से फूटता हुआ एक विलक्षण वर्तमान रू-ब-रू खड़ा है... अनाम, अरक्षित, आदिम अवस्था में।''[4] इस संदर्भ में स्वातंत्र्योत्तर

4. कमलेश्वर : नयी कहानी की भूमिका का फ्लैप।

हिन्दी-कहानी की अनेक रचनाओं को देखा जा सकता है जहां कि सत्तात्मक भ्रष्टाचार का चित्रण हुआ है और एक सामान्य जन अपने आपको अरक्षित एवं बेबस समझता है। 'कमलेश्वर' की कहानी 'बयान' एक ऐसे 'फोटोग्रॉफर' की कहानी है जोकि सी.आई बी. में काम करता है। फिर वह किसी सरकारी पत्रिका में एक 'फोटोग्रॉफर' के पद पर काम करने लगा। उसकी तस्वीरें "पन्द्रह अगस्त, शानदार दावतें, आने वाले विदेशी मेहमान, लाल किले में स्वागत समारोह, शाही सवारी, शिलान्यास, उद्घाटन [5]......... इन्हीं विषयों पर अवलंबित होती थीं। पहले वे अपने व्यवसाय में बड़े उत्साहित दिखाई देते थे, किन्तु धीरे-धीरे उनका यह उत्साह कम होता गया। उन्हें लगा कि, "इन तस्वीरों से कुछ हासिल नहीं होता। मैं खुद कहीं भीतर से झूठा पड़ता जा रहा हूँ। शायद कुछ दिनों बाद मैं किसी से यह भी नहीं कह पाऊँगा कि तस्वीरें सच्ची होती हैं।' [6] एक बार वह गलती से सरकारी पत्रिका को ऐसी तस्वीरें दे गया, जो उसे नहीं देनी थीं, जिसका परिणाम यह हुआ कि "विरोधी दल के किसी सदस्य ने उन तस्वीरों का हवाला देकर मुसीबत खड़ी कर दी थी। .... मंत्रीजी का ब्यान इनकी तस्वीरों से मेल नहीं खाता था। .... इस ग़लती पर इन्हें बहुत डाँटा-फटकारा गया था।' [7] इस कारण से ये फोटोग्रॉफर पद-च्युत किये गये। उसके बाद वे अपनी आँखों से आँसू नहीं, लहू बहाते गये और अन्त में उन्होंने पत्नी तथा बच्ची को छोड़कर आत्महत्या कर ली।

दामोदर सदन की कहानी 'गिरगिट' सत्तात्मक भ्रष्टाचार तथा रिश्वतखोरी की एक प्रामाणिक रचना है। बड़े अफसरों का स्वयं कितना नैतिक पतन हुआ है और वे दूसरी ओर अपने अधीनों पर इस प्रकार बरसते हैं मानो उन्हें कच्चा ही निगलने का उपक्रम रच रहे हैं। किन्तु जब उन्हें 'रिश्वत' तथा 'खानपान' का 'टॉनिक' दिया जाता है उनका गुस्सा एकदम काफूर हो जाता है। अपने मातहतों द्वारा की गई गलतियाँ क्षम्य हो जाती हैं। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से दामोदर सदन ने एक और संकेत किया है कि राजनीति का 'कैनवास' केवल राजनीतिज्ञों तक ही सीमित नहीं रह सकता, बल्कि कहाँ पदाधिकारी

5. मेरी प्रिय कहानियाँ : कमलेश्वर, पृ. 61
6. उपरिवत्, पृ. 70
7. उपरिवत्, पृ. 80

और कहाँ उनके अधीनस्थ–सभी लोग नीतियाँ ही चलाते हैं। यदि उपरोक्त कथन ज़रा और स्पष्ट किया जाय, तो कह सकते हैं कि राजनीति का क्षेत्र बहुत ही व्यापक हो गया है। दैनिक जीवन में हम 'पॉलेटिक्स' एवं 'फ्रॉड' के सहारे ज़िन्दा रहने के आदी हो गए हैं, जीवन में उन्नतिकरने के रास्ते यहीं रह गये हैं। विजया चौहान ने अपनी कहानी 'एक बुतशिकन का जन्म' के माध्यम से नेताओं, प्राध्यापकों एवं दूसरे पदाधिकारियों के भ्रष्टाचार को दिखाया है। भोला नाम का एक छात्र कालिज में पढ़ने गया उसे मालूम था कि मन्द-मन्द मुसकराने वाले ये प्राध्यापक ज्ञान व मान के प्रतीक हैं। उसको पढ़ने-लिखने का बहुत शौक था, साथ ही रचनायें लिखने का भी। परन्तु किसी भी अध्यापक ने उसको साहित्य-सृजन करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया, यद्यपि ये लोग स्वयं रचनायें लिखते थे, रेडियों से वार्तायें प्रसारित करते थे आदि। उसके ''कॉलेज में एक पुराने क्रान्तिकारी भाषण देने आये थे। उन्होंने अपनी ज़िन्दगी के कई बरस जेल में बिताये थे। उन्होंने अपनी जवानी के कई किस्से सुनाये, जब विद्यार्थी छिपकर बम बनाते थे, परचे छापते थे, जुलूस निकालते थे और भगतसिंह की तरह हँसते-हँसते अपने को देश पर न्योछावर कर देते थे।[8] इस कथन से भोला के मन में देशभक्ति का भाव उभर आया, किन्तु जब वह इन बातों पर चलने लगा, उसे महसूस हुआ कि नेताओं के कथन में 'चाहिए' का आधिक्य होता है किन्तु, वे स्वयं उन बातों का पालन नहीं करते हैं और उनके कथन का व्यावहारिक पक्ष आज के संदर्भों से जुड़ नहीं पाता है। इसका परिणाम यह निकलता है कि कॉलेज की हड़ताल होने पर वहाँ खिड़कियों के शीशे तोड़ने के लिए पहला पत्थर भोला ही उठाता है। सामाजिक एवं राजनैतिक अव्यवस्था में उसे महसूस होता है कि उसके अन्दर का कुछ भाग टूट रहा है और वह जंगली बनता जा रहा है।

राजनैतिक एवं सत्तात्मक भ्रष्टाचार को लेकर उपरोक्त कहानियों के अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर निम्नलिखित कहानियाँ भी देखी जा सकती हैं, जिनमें युग-बोध पर आधारित राजनैतिक चिन्तन के संकेत मिलते हैं–अर्थतंत्र (सतीश जमाली), रस्सी (सुदीप), बलवा (सुधा अरोड़ा), मौकापरस्त (भीष्म साहनी), लाश (कमलेश्वर), दिग्भ्रमित (इब्राहीम शरीफ)।

8. एक बुतशिक्त का जन्म : सुधा अरोड़ा दे. नई कहानी : प्रकृति और पाठ–श्री सुरेन्द, पृ. 374

२. स्वायंत्र्योत्तर कहानी में सामाजिक-बोध एवं नवीन जीवन-मूल्य :-

'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में दूसरे प्राणियों के संग रहने के लिए अभिशप्त है--कुछ अपनी प्रकृति के कारण और कुछ आवश्यकताओं के कारण ....' समाज-शास्त्र के ये कुछ शाश्वत नियम हैं, जिन्हें आज भी हम मानने के लिए विवश हैं। आजका मनुष्य भी उसी प्रकार समाज में अपना जीवन व्यतीत करने के लिय विवश है जिस प्रकार 'अरस्तू' के युग में वह इसमें रहने के लिए अपने आपको विवश समझता था। समाज के प्रति आक्रोश, विरोध, विक्षोभ का प्रदर्शन करते हुए भी स्वायंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का रचनाकार अन्ततः समाज की अनिवार्यता पर ज़ोर देता है, क्योंकि चाहने-अनचाहने मनुष्य को समाज में ही रहना पड़ता है। इसी धारणा को स्पष्ट करते हुए धर्मवीर भारती की कहानी 'अगला अवतार' का नायक कहता है, "व्यक्ति का अस्तित्व समाज के बाहर तो है ही नहीं।"[9] लगभग इसी धारणा को लेकर नरेश मेहता ने अपनी 'अनबीता व्यतीत' की नायिका चारू के बारे में लिखा है, "..... चारू के निकट लोग वैसे ही अनिवार्य थे जैसे नहाने के बाद टेल्कम-पाउडर अथवा यात्रा के लिए सस्ती एवं रोमांचक पत्र-पत्रिकाएं। क्योंकि लोगों के होने में ही आपका होना बोधित होता है। स्वतः होना एक प्रकार की जड़ता है, विशिष्ट ढंग की ही सही, पर है जड़ता ही। बिना दर्पण के कितनी वैसी-वैसी-सी उलझन होती है न, कि पता नहीं इस बीच आप में से जाने क्या-कितना-कुछ छूट गया हो, लेकिन दर्पण में अपने को यथावत समग्र देख लेने पर कैसा गहरा परितोष होता है--बस, वैसा ही लोगों के होने पर होता है। कैसी झालरदार मलमल के फूले स्कर्ट की तरह हलकापन लगता है।"[10] नरेश मेहता के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि आजका व्यक्ति समाज की अनिवार्यता पर बल तो देता है, किन्तु अलग माइने में। उदाहरणार्थ आज के आदमी की समाज के प्रति सुधारवादी दृष्टि की धारणा बदल गई है, इसलिए आजका कहानी-पात्र न तो सामाजिक-सुधार करने के लिए अपने आपको प्रतिबद्ध समझता है और न ही अपने आपको सामाजिक परंपराओं का पालन करने के लिए विवश। यही कारण है कि हमें आज, प्रेमचन्द की तरह ऐसे कहानी-पात्र नहीं मिलेंगे जोकि

9. चाँद और टूटे हुए लोग : धर्मवीर भारती, पृ. 53
10. एक समर्पित महिला : नरेश मेहता, पृ. 17

आदर्शवादी होकर सामाजिक कुरीतियों पर भाषण करते हुए दिखाई देंगे या प्रगतिवादी कहानीकारों के पात्रों की तरह उनका विद्रोह करते नज़र आयेंगे। इसका कारण यह है कि समाज के प्रति पुरानी मान्यतायें, आस्थायें एवं विश्वास टूटते जा रहे हैं और दुतगति के साथ नवीन सामाजिक-मूल्य बनते एवं बिगड़ते जाते हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-कहानी के रचनाकार ने बनते-टूटते सामाजिक-मूल्यों का चित्रण प्रामाणिक अनुभूति के निकष पर परख कर बड़ी ईमानदारी से किया है।

यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि आजका कहानी-पात्र समाज से ऊपर उठकर सामाजिक-मूल्यों का निर्माण क्यों नहीं करता ? इसका उत्तर स्पष्ट है कि इस वैज्ञानिक युग में हमें प्रत्येक चीज द्रुतगति से बदलती हुई दिखाई देती है। कल की बातें सारहीन प्रमाणित हो सकती हैं, और इसी प्रकार आजके सामाजिक-मूल्य भविष्य में शून्य के बराबर माने जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक-जीवन में हम बने-बनाये शास्त्रीय लीकों पर नहीं चल सकते हैं। प्रसाद-प्रेमचन्द के पात्रों का जीवन चूँकि निश्चित मार्ग पर चलने वाला इकहरा जीवन था, उनके पात्र पूर्व-निर्धारित आदर्शों के आलोक में जीवन व्यतीत करते थे, इसलिए उनके लिये परंपरागत सामाजिक-मूल्यों के अधीन होकर जीवन व्यतीत करना सम्भव था। परन्तु प्रेमचन्द-प्रसाद तथा दूसरे कहानीकारों के पात्रों की प्रतिक्रियाएं ढल चुकी हैं। आज जीवन की गति इतनी तीव्र है कि प्रत्येक स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटना के साथ जीवन के प्रेरक संदर्भ बदलते जा रहे हैं, इसलिए आज समाज से ऊपर उठकर महर्षि की तरह जीवन-मूल्य एवं समाज के नियम निर्धारित नहीं किये जा स कते हैं।

स्पष्ट है कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-कहानियों का सामाजिक-बोध परंपरागत नहीं है, बल्कि बदलती परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तत आये हैं। इस बोध को निम्नलिखित विषयों के अन्तर्गत देखा जा सकता है :–

२./अ : स्वातंत्र्योत्तर कहानी में समाज के प्रति अनास्था।
२./आ : स्वातंत्र्योत्तर कहानी : परंपरागत मूल्यों के विघटन की कहानी।

२./अ : सामाजिक अनास्था :–

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद 'नई कहानी' एवं साठोत्तरी कहानी में हमें जिन पात्रों से साक्षात्कार होता है, उनके लिए समाज टूटता जा रहा है या वे ही समाज के लिये टूटते जा रहे हैं। इसका कारण यह है कि पिछले महायुद्ध और स्वतंत्रता के पश्चात् जो मन:स्थिति देश की नयी पीढ़ी में पैदा हुई वह अनास्था और अस्वीकार की मन:स्थिति थी। स्वतंत्रता के उपरान्त कुछ वर्षों तक अन्य राष्ट्रों के बीच भारत के बढ़ते हुए सम्बन्धों के कारण आस्था का उन्मेष दिखाई दिया किन्तु शीघ्र ही उसका स्थान एक व्यापक मानसिक गतिरोध और असामर्थ्य-भावना ने लिया। इसका कारण यह था कि सामान्य आदमी ने अपने आपको राजनैतिक भ्रष्टाचार एवं सामाजिक अव्यवस्थता में अपने आपको बिल्कुल अकेला महसूस किया। उसे अनुभव हुआ कि पंचवर्षीय योजनाओं, राजनैतिक कानफ्रेन्सों तथा नेताओं के भाषणों के द्वारा वह छलाया जा रहा है। सरकार द्वारा प्रस्तुत वह उन्नति के आंकड़ों में कहीं भी नहीं है। नेताओं की स्वार्थ-वृत्ति, बढ़ती हुई झुंड-सत्ता, भ्रष्टाचार और नौकरशाही का दिन-प्रतिदिन विकराल रूप उसके सामने स्पष्ट होता गया। समाज में फैली हुई बेईमानी और दायित्वहीनता एक सामान्य भारतीय के लिए विशाल अजगर की तरह फन फैलाये खड़ी थी। इसलिये स्वातंत्र्योत्तर नई पीढ़ी के लिये 'समाजवाद', 'मानवतावाद' तथा ऐसे ही दूसरे वादों में असारता के सिवा और कुछ दिखाई नहीं दिया। उधर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने भी मानव की सभ्य समाज के प्रति आस्था हिला दी। हंगरी, कोरिया और वियतनाम में मानवीय पीड़ा के भयावह परिदृश्य भी उसके सामने खुलते गये और मित्रता के नाम पर चीन ने भारत पर जो हमला किया, उससे जहाँ एक ओर सर्वहारा-क्रान्ति के ठेकेदारों के दावे झूठ प्रमाणित हुए, वहाँ दूसरी ओर प्रगतिवादी साहित्य के प्रति भी पाठकों का रवैया बदल गया। चूँकि यह साहित्य 'समूह', 'सामाजिक-मूल्य' जैसे शब्दों एवं मान्यताओं पर ज़ोर देता है और वैयक्तिक अस्तित्व पर कम बल देता आया है, इसलिये बदलती परिस्थितियों में एक व्यक्ति अपने आपको वैयक्तिक अधिक और सामाजिक कम मानने लगा।

यातायात के सुगम साधनों तथा प्रैस, रेडियो, समाचार-पत्र के अत्यधिक प्रसार से एक व्यक्ति दिखावे के लिए अपने आपको न केवल राष्ट्रीयं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय समाज का नागरिक कहने के लिए अभिशप्त-सा है। उसके लिए 'राष्ट्र' और 'अन्तर्राष्ट्र जैसे शब्द धोखे एवं छलावे के सिवा और

कोई अर्थ नहीं रखते हैं। निर्मल वर्मा की कहानी 'लन्दन की एक रात' आधुनिक जीवन के संत्रास एवं भयावह संसार को हमारे सामने प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत कहानी में जार्ज, विली और कथावाचक ने अपना-अपना वतन इसलिए छोड़ा है कि वे देश के लोगों से बच सकें। लन्दन में आकर वे सुरक्षा की खोज में स्वयं को अरक्षित पाते हैं। कहानी में यह संकेत है कि हमारा सभ्य समाज अत्याचार एवं आतंक को रोकने में असमर्थ और अक्षम है। काम की तलाश में निकले बेकार नीग्रो एवं अफ्रेशियाई इस भय से मुक्त होने की कोशिश में लड़कियों और पेयों में गुम होने का प्रयत्न करते हैं।[11] बेकारी की अब से बचने के लिये कहानी के पात्र लंदन में रात्रि के समय यहाँ की सड़के नापते हुए निरुद्देश्य भटकते हैं। रंगभेद के कई गोरे समर्थक विली की हत्या इसलिये निमर्मता से करते हैं, उसका सिर बेरहमी से दीवार से फोड़ा जाता है क्योंकि उस पर रॉयटर होने का अपराध लगाया जाता है। कहानी के माध्यम से स्पष्ट होता है कि ये पात्र भी एक-दूसरे से टूटकर अपनी-अपनी राह लेने के लिए विवश हैं— एक पात्र ट्यूब से चला जाता है, दूसरा प्लेटफार्म पर बैठा रह जाता है, तीसरा अपनी ही अलग राह लेता है। इर प्रकार "लन्दन अरक्षा का प्रतीक बना हुआ है और एक महानगर समस्त संसार का प्रतीक है जिसमें आज का मनुष्य स्वयं को अरक्षित अनुभव करने लगा है।[12] डॉ. नामवरसिंह को प्रस्तुत कहानी के माध्यम से बढ़ते हुए फासिस्ट खतरे के संकेत मिले हैं[13] स्पष्ट है कि ऐसे समाज के प्रति यदि आजके व्यक्ति की आस्था टूट जाय तो कोई असाधारण बात न होगी। निर्मल वर्मा की 'कुत्ते की मौत', 'सितम्बर की एक शाम', 'पराए शहर में', 'लवर्स' तथा ऐसी ही दूसरी कहानियों में युग का आतंक एवं संत्रास के चित्र तथा उससे मुक्त होने के प्रश्न उठाये हैं। इसी प्रकार कमलेश्वर की कहानी 'खोई हुई दिशाएँ' में यह दिखाया गया है कि कस्बे का आदमी बड़े शहर में आकर भटकन, अकेलापन, और सूनापन महसूस करता है। ऐसे वातावरण

11. "खम्भे की आड़ में युवक ने कहा—अगली गाड़ी से—और उसे चूम लिया। लड़की की आँखें मुँद गई।
उसने देखा भी नहीं................
और मुझे लगा जैसे मुददत से सिगरेट नहीं पी।"
— नई कहानी : प्रकृति और पाठ—श्री सुरेन्द, पृ. 216
12. हिन्दी कहानी : अपनी जवानी—डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृ. 140
13. उपरिवत् पृ. 139

में आकर उसके लिए स्थिति और दृष्टि दोनों बदल जाती हैं। कहानी का नायक दिल्ली में आकर जिस मकान में रहता है, वह इर्द-गिर्द के मकानवालों से अपरिचित है। एक बार अपनी भूतपूर्व प्रेमिका से मिलने पर उसे मालूम होता है कि वह भी उससे अपरिचित है या अपरिचित होने का ढोंग रचती है। भीड़ में खोया हुआ यह व्यक्ति जब घर पहुंचता है तो उसे भ्रम-सा होता है कि पत्नी भी उसको पहचान नहीं पाती। आजके समाज में दिखाने या गिनने-गिनाने के लिये तो लोग-ही-लोग हैं, किन्तु अपनी जीवन-यात्रा में हम बिल्कुल अकेले होते जा रहे हैं। कमलेश्वर की ही 'दिल्ली में एक मौत', 'पराया शहर', 'एक रुकी हुई ज़िन्दगी', 'तलाश', 'दु:ख भरी दुनिया', 'अपने देश के लोग' तथा अन्य अनेक कहानियों में आधुनिक व्यक्ति के चारों ओर का संदर्भ दिखाया गया है जोकि हर लिहाज़ से दारूण और विसंगत है।

मोहन राकेश की कहानियों के पात्र समाज में रहते हुए तो दिखाये गये हैं, किन्तु इसमें रहकर भी वे समाज से बेगाने हैं। दूसरे शब्दों में, मोहन राकेश की कहानियों का अकेलापन एवं अजनवीपन समाज-सापेक्ष है। इस संदर्भ में उनकी कहानी 'पाँचवें माले का फ्लैट' जैसी कहानी का वर्णन करना असंगत न होगा। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने अविनाश के माध्यम से महानगर के जीवन में खोये हुए व्यक्ति की त्रासदी व्यक्त की है। एक सामाजिक प्राणी दूसरे परिचित प्राणी से मिलता है, हाथ जोड़ता है—केवल शिष्टाचार या स्वार्थ के नाते। हमारा व्यवहार, हमारी बातचीत, संवेदना, सहानुभूति, ये सभी अपना अर्थ खोकर अर्थहीन एवं खोखले दिखाई देते हैं। अविनाश को बंबई की भीड़ में जब दो परिचित लड़कियाँ मिलती हैं, उनकी बातचीत, व्यवहार, कार्य-कलाप इत्यादि से ये सम्पूर्ण बातें स्पष्ट होती हैं। इस कथन की पुष्टि के लिए कहानी का एक स्थल प्रस्तुत है, "अब तक शादी नहीं की ?" हाथ के पैकेटों की गिनती करते हुए उसने पूछा। आवाज़ से लगा, जैसे बहुत दूर चली गई हो। सवाल में लगाव ज़रा भी नहीं था। हैरानी, हमदर्दी कुछ नहीं। उत्सुकता भी नहीं। ऐसे ही जैसे कोई पूछ ले, 'अब तक दाँत साफ नहीं किए ?"[14] राकेश की कुछ कहानियों में व्यक्ति और परिवेश के बीच तीव्र तनाव का अंकन मिलता है, जैसे 'एक और ज़िन्दगी' और 'फौलाद का आकाश' में। 'एक और ज़िन्दगी' में हमें दाम्पत्य जीवन के तनावपूर्ण चित्र मिलते हैं। यहाँ पति-पत्नी दोनों अकेला और शून्य

14. मेरी प्रिय कहानियाँ : मोहन राकेश, पृ. 139

जीवन व्यतीत करने के लिये अभिशप्त हैं। सारी कहानी में कोहरे और बादल की भाँति एक अनाम-सा दर्द व्याप्त है। 'फौलाद का आकाश' में भी पति और पत्नी के संबंधों के संक्रमण तथा अपनों के बीच अजनबी होने की यंत्रणा को देखा जा सकता है। हमारे दाम्पत्य सम्बन्ध (प्रकारान्तर सामाजिक सम्बन्ध) फौलाद की ही तरह कठोर, शुष्क एवं नीरस हो गये हैं। ऐसे समाज के प्रति आज के व्यक्ति की एकरसता टूटी है और बेकली बढ़ी है।

उपरोक्त कहानियां के अतिरिक्त जिन अन्य कहानियों में आजका व्यक्ति अपने व्यापक परिवेश एवं समाज से कटता हुआ दिखाया गया है, उनमं से कई इस प्रकार हैं :– 'मिस पाल' (मोहन रोकश), 'कोसी का घटवार' (शेखर जोशी), 'चीज़ें कितनी तेज़ी से बदल जाती हैं.....) (सोमेश्वर), 'आइसबर्ग' -(दूधनाथ सिंह), शेष होते हुए (ज्ञानरंजन), युगान्तर (इब्राहीम शरीफ), 'रक्तजीवी' (जितेन्द्र भाटिया), 'आखिरी रात' तथा 'सुख' (काशीनाथ सिंह)।

२./आ : स्वातंत्र्योत्तर कहानी : परंपरागत मूल्यों का विघटन एवं नवीन सामाजिक मूल्य :–

बदलती परिस्थितियों एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने के कारण जीवन की प्रत्येक घटना को मानव-मानव के रिश्तों को विशुद्ध रूप से अब नवीन धारणाओं एवं दृष्टिकोणों से परखा जाता है, जिनमें बुद्धि-तत्व का ही प्राधान्य होता है। इसीलिए नये सामाजिक संदर्भ में हमारे परंपरागत मूल्य महत्वहीन एवं असार प्रतीत होने लगे हैं। भारतीय नैतिकता की बात करना अब निरर्थक प्रतीत होता है। आज वे सम्पूर्ण सामाजिक–मूल्य एवं आदर्श सारहीन प्रतीत होने लगते हैं जो हमारे देश में पंरपरा से चलते आये हैं। आजकल उन्हीं मूल्यों एवं आदर्शों (?) को मान्यता प्राप्त है जो व्यावहारिक हैं। इस प्रकार पुरानी मर्यादाएँ एवं मान्यताएँ आधुनिक संदर्भ में निष्प्राण एवं विकृत प्रमाणित हुई हैं।

परंपराागत मूल्यों का विघटन हमें धार्मिक संस्थाओं के पतन तथा संयुक्त परिवारों के विघटन से स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति-वयक्ति के बदलते पारस्परिक सम्बन्धों से भी युगीन सामाजिक-बोध एवं नवीन मूल्यों का ज्ञान होता है, जिसमें पति-पत्नी, स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र, भाई-बहन आदि सम्मिलित हैं। स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में सामाजिक-बोध तथा नवीन

जीवन मूल्यों को स्पष्ट करने के लिये कई कहानियो का यहाँ उल्लेख करना असंगत न होगा।

भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ़ की दावत' हमारे वर्तमान समाज के व्यापक अन्तर्विरोध की ओर संकेत करती है। कहानी के प्रधान-पात्र शामनाथ ने 'चीफ़' को अपने घर आमंत्रित किया है। उठने-बैठने के लिए उसके पास एक ही कमरा है। इसलिए कहानी का आरम्भ भी एक संकट की स्थिति से होता है। घर का फालतू सामान आलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई कि बूढ़ी माँ को कहाँ छिपाया जाय। शामनाथ के लिए 'फ़ालतू सामान' की समस्या उतनी दारूाण नहीं प्रतीत हुई जितनी कि बूढ़ी माँ की, क्योंकि वह उसके लिए एक जीवित फालतू सामान है। इस तरह शामनाथ कूड़े की तरह अपनी मां को उस घर में छिपाता फिरता है। उधर माँ लड़के के इस व्यवहार का कुछ बुरा नहीं मानती, बल्कि लड़के के भले के लिए अपने को यहाँ से वहाँ छिपाती फिरती है। वह अपने अस्तित्व से संकुचित हुई जा रही है। प्रस्तुत कहानी की 'माँ' न केवल एक चरित्र ही है बल्कि एक प्रतीक भी– सम्पूर्ण प्राचीन की। हमारे आधुनिक समाज में उन्हीं सम्बन्धियों की आवश्यकता होती है जो हितकर हो और जो अपने आपको 'एडजेस्ट' होने की समर्थता रखत हों। शामनाथ के लिए घर की बूढ़ी माँ अब फालतू सामान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसलिए उसको डेड-स्टॉक' में ही जाना चाहिए। यह इस समय की विडम्बना है जिससे हम सब कहीं-न-कहीं और किसी-न-किसी रूप में दो-चार हैं। मशीनी-मानव के इस युग में हमारे रिश्ते भी मशीनी जैसे ही होते जा रहे हैं। हमारी भावनायें कब की मर चुकी हैं और हम अब प्रत्येक चीज़ को बुद्धि की कसौटी पर परख़कर उसकी उपयोगिता-अनुपयोगिता को देखते हैं। पुराने मूल्य मरते जा रहे हैं और उनकी पूर्ति नवीन मूल्यों से होती जा रही है।

भीष्म साहनी की ही तरह उषा प्रियवदा ने अपनी कहानी 'वापसी' के माध्यम से परम्परागत मान-मूल्यों पर एक प्रश्न-चिन्ह लगाया है। कहानी से नये एवं पुराने सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों और जीवन-दृष्टि का अन्तर स्पष्ट होता है। एक लम्बे अन्तराल के बाद अवकाश-प्राप्त गजाधर बाबू जब अपने घर लौटे वे आशाओं एवं आकांक्षाओं से परिपूर्ण थे। उन्होंने अपनी नौकरी के

दिन घर-गृहस्थी से दूर अकेले में गुज़ारे थे और रिटायर होकर वे अपने भरे पूरे परिवार में सानन्द जीवन व्यतीत करना चाहते थे। घर आकर उन्हें यह आनन्द मृगमरीचिका के समान प्रतीत हुआ। 'उन्हें वहाँ भी अपने अकेलेपन, असंगत होने तथा दूसरों के द्वारा न समझे जाने का अहसास बहुत भीतर तक गहराया गया। इस प्रकार वे अपनी बहू व पुत्री तथा पत्नी एवं पुत्र के लिये एक बाधा के सिवा और कुछ प्रमाणित नहीं हुये। अपने आपको 'एडजेस्ट' न कर पाने के कारण वे पुनः उसी स्थान पर एक प्राइवेट मिल में नौकरी करने गये जहाँ कि वे पहले सरकारी अफ़सर थे। प्रस्तुत कहानी में गजाधर बाबू एक प्रतीक हैं– सम्पूर्ण प्राचीन के, जो घर के नवीन वातावरण से समझौता न करके, उससे पलायन करते हैं।

इस प्रकार आजके 'परिवार' में नवीन मूल्य प्रवेश कर रहे हैं जबकि पुराने मान-मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। प्रस्तुत कहानी परिवार की सीमाओं से ऊपर उठकर पूरे परिवेश और सामाजिक संदर्भ से सम्बद्ध हो जाती है। डॉ. धनंजय ने प्रस्तुत कहानी के बारे में ठीक ही कहा है, ''यह एक व्यक्ति की अपने ही द्वारा निर्मित अपने ही परिवार से वापसी की कहानी न होकर सारे पुराने मूल्यों से वापसी और एक नयी दिशा और राह पर चलने की कहानी'' है।[15]

इस प्रकार परिवार जैसी सामाजिक संस्था टूटती जा रही है, वहाँ के परंपरागत मान-मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगता जा रहा है और युगानुकूल नवीन मूल्य स्थापित होते जा रहे हैं। अब संयुक्त परिवार की बात करना कुछ अर्थ नहीं रखता है। ज्ञानरंजन की कहानी 'शेष होते हुए' इसी बात की ओर संकेत करती है। एक बड़ा घर मात्र देखने तथा दिखाने के लिए है, जबकि अन्दर-ही-अन्दर यह विघटित होता जा रहा है। घर के अन्दर अनेक घर हैं। ''हर व्यक्ति के कमरे में दूसरे से अलग एक स्वतंत्र और पृथकता ज्ञापित करने वाला स्वभाव है। निजी व्यवस्था की प्रवृत्ति कुछ लोगों में छोटे पैमाने पर अन्दर-ही-अन्दर प्रयत्नशील हैं।'[16] इस प्रकार घर अन्दर-अन्दर खंडित होते जा रहे हैं।

15. नई कहानी : दशा, दिशा, सम्भावना—श्री सुरेन्द, पृ. 107
16. नई कहानी : प्रकृति और पाठ—श्री सुरेन्द, पृ. 432

उपरोक्त कहानियों के अतिरिक्त मन्नू भंडारी की 'क्षय', राजेन्द्र यादव की 'फ्रैंच लेदर', 'प्रतीक्षा' तथा 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', गिरिराज किशोर की 'पेपरवेट' तथा अन्य अनेक स्वातंत्र्योत्तर कहानियां में जहां विगत मूल्यों की असारता को दिखाया गया है वहाँ नवीन सामाजिक मूल्यों के स्थापित होने के संकेत भी इन कहानियों में उपलब्ध हैं।

जिस प्रकार संयुक्त परिवार जैसी सामाजिक संस्था टूटती जा रही है, उसी प्रकार स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंधों में भी परिवर्तन आये हैं। दिन-ब-दिन उनके संबंधों में तनाव बढ़ता जा रहा है।अब 'नारी' पुरुष के लिए एक समस्या सी बन कर खड़ी हो गई है। इसका कारण यह है कि आज़ादी प्राप्त करने के बाद स्वराज में एक भारतीय नारी कानूनी और आर्थिक लिहाज़ से स्वतंत्र है। इस स्वतंत्रता ने उसे अपना योग्य वर चुनने तथा अयोग्य वर ठुकराने की समर्थता प्रदान की है। उधर पुरुष भी स्वतंत्र रूप से सैक्स-जीवन की माँग कर रहा है। स्त्री विवाह-संस्था के द्वारा अपने व्यक्तित्व की रक्षा चाहती है और वह इसको अपने व्यक्तित्व के अनुसार मोड़ना-मरोड़ना चाहती है।

स्त्री-पुरुष के बदलते रिश्तों को लेकर स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें बदलते सामाजिक मूल्यों की ओर स्पष्ट संकेत मिलते हैं। मन्नू भंडारी की 'तीसरा आदमी' तथा 'यही सच है, मोहन राकेश की एक और ज़िंदगी', उषा प्रियवदा की 'वापसी', 'रवीन्द्र कालिया की नौ साल छोटी पत्नी', तथा ऐसी ही दूसरी अनेक कहानियों में हमें स्त्री-पुरुष के बदलते सम्बन्धों का बोध तथा नवीन सामाजिक मूल्यों के स्थापित होने के संकेत मिलते हैं। 'तीसरा आदमी' की नायिका 'शकुन' अपने पति के अतिरिक्त आलोकनाथ नामक लेखक के साथ स्वछंद सम्बन्ध स्थापित करने में नहीं हिचकिचाती है। वह यह भी देखना चाहती है कि आलोकनाथ के उनके घर आने पर सतीश (शकुन का पति) किस सीमा तक प्रसन्नता का अनुभव कर सकेगा। 'यही सच है' में 'दीपा' के निर्णय तथा अनिर्णय के मध्य की स्थिति को दिखाया गया है। दीपा पहले 'निशीथ' की प्रेमिका थी किन्तु कई कारणों से दीपा को उससे सम्बन्ध तोड़ने पड़े। अपने जीवन में हरियाली लाने के लिए उसने पुनः 'विजय' नामक दूसरे व्यक्ति के साथ प्रेम-सम्बन्ध जोड़ दिए। वह

अब उसके साथ विवाह करने के बारे में सोच ही रही है कि अचानक कलकत्ता आकर वह संयोग से निशीथ से मिली। इस बार निशीथ के शिष्ट-व्यवहार तथा गम्भीर व्यक्तित्व से वह इतनी प्रभावित हुई कि पिछला सब-कुछ भूलकर वह फिर एक बार उसी की होना चाहती है। मगर वापस कानपुर लौटने पर, अपने नवीन प्रेमी से मिलते ही 'दीपा' उसके आलिंगन पाश में बन्ध जाती है। एक प्रकार से यह कहानी अस्तित्व के क्षणों की कहानी मानी जा सकता है। दीपा उसी क्षण को सच मानती है, जिस क्षण से उसका साक्षात्कार होता है, किन्तु किसी भी क्षण में वह अन्तिम निर्णय लेने में असमर्थ है। मोहन राकेश की कहानी 'एक और ज़िंदगी' में भी स्त्री-पुरुष के बदलते रिश्तों तथा नवीन जीवन-मूल्यों के संकेत मिलते हैं। वीना (प्रकाश की भूतपूर्व पत्नी) अपने पति के साथ समझौता करने में असमर्थ हुई। एक बच्चे की मां बन जाने पर भी वीना का प्रकाश से विच्छेद हुआ। अलग होकर वह स्वतंत्र रूप से अपने बच्चे की देखभाल करती है। 'वीना' अन्य भारतीय नारियों की तरह आर्थिक लिहाज़ से स्वतंत्र है। इस आर्थिक स्वतंत्रता ने उसको अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने की समर्थता प्रदान की है। अब 'पतिव्रता' जैसे शब्द से उसका विश्वास उठ गया है। उधर पुरुष भी स्त्री के पूर्ण व्यक्तित्व को अपनेर मानसिक स्तर पर स्वीकृति देने के लिये तय्यार नहीं है। वह स्वयं परायी स्त्री से स्वछंद रूप से सैक्स का उपभोग करना चाहेगा, लेकिन दूसरी ओर विवाह संस्था को पवित्र मानकर भी वह केवल नारी से ही पतिव्रता और 'पवित्रता' की माँग करना चाहेगा। इस प्रकार स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों में तनाव दिन-ब-दिन गहराता जा रहा है। समाज की यह विवाह-संस्था अब अर्द्ध-इकाई में परिवर्तित हो गई है।

'रवीन्द्र कालिया की कहानी 'नौ साल छोटी पत्नी स्त्री-पुरुष के बदलते सम्बन्धों को अत्यंत सूक्ष्मता से दिखाती है। प्रस्तुत कहानी में तृप्ता सहेली की कहानी के माध्यम से अपने प्रेम की कहानी कहती रहती और अपने प्रेम-पत्रों से भरी अटैची को ड्राइंग रूम में चारपाई के नीचे खिसकाती रहती है। पति भी उस अटैची को एक बार खिसकाता है। कुशल (पति) उन पत्रों को पढ़ भी चुका है पर फिर भी वह तटस्थ है। पति-पत्नी के सम्बन्धों में सदा से एक प्रकार की जो भावात्मक स्थिति रही है, आज इस स्थिति में परिवर्तन आ गया है। दोनों ही ओर से एक प्रकार की तटस्थता या 'एक नई खामोशी' आती जा रही है। एक सर्द खामोशी (विजय चौहान) का नवविवाहित दम्पति धन कमाने के लिए दो अलग-अलग शहरों में विभक्त हो जाता है। पति पत्नी के शहर तभी आता है

जब उसे अपने व्यवसाय का कोई काम पड़ता है। पत्नी उसे लेने भी नहीं जाती तथा जिस सुबह वह जाने को होता है, उस सुबह वे देर तक सोना चाहते हैं।

उपरोक्त कहानियों के अतिरिक्त निर्मल वर्मा की 'पिता और प्रेमी', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' उषा प्रियवंदा की 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल', 'राजेन्द्र यादव की 'टूटना', मन्नू भंडारी की 'चश्मे' तथा ऐसी ही अनेक कहानियों में स्त्री-पुरुष के बदलते रिश्तों के आधार पर समसामयिक सामाजिक बोध का परिचय होता है। आजके परिवर्तित जीवन में समाज विश्रृंखलित होता जा रहा है। समाज में रहकर भी आजका व्यक्ति अपने समाज तथा परिवेश से कटता जा रहा है।

३. मूल्यहीनता की स्थिति :—

हम देख चुके हैं कि समाज में रहने वाले सामाजिक प्राणी (मनुष्य) का अपने समाज तथा उसके परंपरागत मूल्यों के प्रति धारणा बदल गई है। अस्तित्ववादी मान्यताओं तथा युगीन परिस्थितियों के दबाव के कारण उसका विश्वास है कि जीवन-मूल्यों की सत्ता मानवीय चयन-भावना की सापेक्षता में ही है। दूसरे शब्दों में, यदि मनुष्य चाहे तो अपनी स्वातंत्र्य भावना के बल पर वह उन सभी मूल्यों को ठुकरा सकता है जो उसके व्यक्तित्व और अस्तित्व के निर्माण में बाधा उपस्थित करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-कहानी में प्राचीन मूल्यों आदर्शों, सत्यों, रूढ़ियों और प्रथाओं के प्रति तीव्र आक्रोश तथा नवीन मूल्यों के ग्रहण की उत्त्कट प्यास दिखाई पड़ती है। आजके व्यक्ति का मन प्राचीन आदर्शों और मूल्यों के प्रति विद्रोह कर उठा है। 'नयी कहानी' तथा साठोत्तरी कहानी-लेखकों ने इस दृष्टिकोण को लेकर कहानियां लिखी हैं।

आज़ादी के बाद हमारी परिस्थितियों में आमूलाग्र परिवर्तन आये, जिसके परिणामस्वरूप हमारा सामाजिक जीवन भी बदल गया। पुरानी आस्थाओं एवं परंपराओं से मनुष्य की आस्था डगमगा उठी। चूँकि स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार ने सामान्य लोगों की तरह ही इस बदलते परिवेश को अपनी आँखों से देखा, इसलिये व्यतीत कहानी-लेखकों की अपेक्षा उसमें ''मानव-मूल्यों के

संरक्षण, जीवनी शक्ति के परिप्रेक्ष्य एवं सामाजिक नवनिर्माण'' [17] की उत्कट प्यास है।

राजेन्द्र यादव की कहानियों के कई पात्र प्राचीन मर्यादाओं और रूढ़ियों को ठोकर मारकर आगे बढ़ना चाहते हैं। ऐसा करने पर चाहे वेदों का अपमान होता हो, चाहे प्राचीन मान्यताओं को ठेस पहुँचती हो, उन्हें कोई चिन्ता नहीं है। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव की कहानी 'प्रतिहिंसा' की नायिका का कथन दृष्टव्य है। [18] उनकी दूसरी कहानी 'प्रश्नावाचक पेड़' का एक पात्र निर्भीक होकर कहता है, ''हम तो समाज को मर्यादा और नैतिकता के इन झूठे मूल्यों को बदलेंगे [19] इसी प्रकार धर्मवीर भारती ने भी अपनी कहानियों में अनूठी व्यंजनाओं एवं प्रतीक-विधानों के माध्यम से सामाजिक विकृतियों के निराकरण और नये सामाजिक रूप-विधान की स्थापना की अकुलाहट दिखाई है। 'यह मेरे लिए नहीं' के एक मुख्य पात्र के माध्यम से उन्होंने विराट पृष्ठभूमि को अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से इस प्रकार समेटा है कि उसमें आजकी संमूची नयी पीढ़ी की ट्रैजेड़ी, पीढ़ियों का संघर्ष, मनःस्थितियों की विषमताएँ आदि को स्पष्टतया उभारकर सामने लाया है। उनकी 'गुलकी बन्नो' 'सावित्री नम्बर दो' तथा ऐसी ही दूसरी कहानियाँ इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

जीवन के शाश्वत यथार्थ की प्रतीति कराने वाले कहानीकार अमरकान्त ने अपनी कई कहानियों के माध्यम से युग के नवीन मूल्यों की व्याख्या तथा उनकी स्थापना नवीन ढंग से की है। इस सिलसिले में उनकी 'दोपहर का भोजन' तथा 'ज़िन्दगी और जोंक' जैसी कहानियों को देखा जा सकता है। जीवन की कठोरताओं एवं भीषणताओं से टकराता हुआ मानव, ओढ़े मुखौटे चेहरों तथा मानव-मर्यादा छोड़कर, अन्ततः विशुद्ध रूप से मानव ही रह जाते हैं। ये लोग केवल समस्याओं से जूझना जानते हैं, उनसे विद्रोह नहीं करते। उनकी कहानी 'दोपहर का भोजन' इसी थीम पर आधारित है। 'ज़िन्दगी और जोंक' में एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण है जो मरना नहीं चाहता, इसलिए

17. राजा निरबंसिया (भूमिका) : कमलेश्वर, पृ. 7
18. मैं तुम्हें बता दूँ ऐसी प्राचीन रूढ़ियों को मैं ठोकर मारकर मार्ग से अलग कर दूँगी जो मनुष्य को पशु समझती हों–चाहे वे स्मृतिविहित हों या वेदविहित
 – देवताओं की मूर्तियाँ : राजेन्द्र यादव पृ. 138-39
19. छोटे-छोटे ताजमहल : राजेन्द्र यादव, पृ. 128

ज़िन्दगी से जोंक की भाँति चिपटा रहता है। लेकिन लगता है कि स्वयं ज़िन्दगी जोंक बनकर उससे चिपटी हुई थी जो धीरे-धीरे उसके रक्त की अन्तिम बूँद तक पी गयी। यह कहानी एक प्रश्न उपस्थित करता है कि आर्थिक विषमता से ग्रस्त आजके व्यक्ति के जीवन का मूल्य आखिर क्या है ? आदमी जोंक है या जिन्दगी कौन किसका खून चूस रहा है। इस स्थिति को अमरकान्त ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उजागर किया है।

आंचलिक कहानीकार फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय, शैलेश मटियानी, शिवप्रसाद सिंह आदि कहानीकारों की कहानियों में देश के विभिन्न अंचलों का जीवन अपनी पूरी यथार्थता एवं सच्चाई के साथ हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। इन कहानियों के माध्यम से यही लगता है कि भारत की प्राचीन रूढ़ियों, प्रथाओं, सत्यों, मूल्यों और आदर्शों का पर्याप्त मात्रा में खंडन किया गया है। बदलती हुई स्वातंत्र्योत्तर विभिन्न परिस्थितियों तथा आधुनिक भाव-बोध के कारण धार्मिक विश्वासों का खंडित होना, रूढ़ियों तथा परम्पराओं का टूट जाना, पुरातनता का नष्ट होना इत्यादि--इनका चित्रण आंचलिक कहानीकारों ने अपनी लेखनी से सफलतापूर्वक किया है।

साठोत्तरी कहानीकारों ने भी व्यतीत दशक के कहानीकारों की तरह ही उन मूल्यों का खंडन किया है जो मानव-अस्तित्व के विकास में बाधा उपस्थित करते हैं। इन्होंने प्राचीनता के प्रति तीव्र आक्रोश, घृणा, तिरस्कार, व्यंग्य और क्षोभ की भावना प्रकट की है। ज्ञानरंजन की कहानी 'फेन्स के इधर और उधर[20] में दो दुनियाओं का चित्रण है- एक, नायक के परिवार की दुनिया और दूसरी, नये परिवार की दुनिया। यह सच है कि नायक की सहानुभूति नये परिवार के साथ है लेकिन वह अपने संस्कारों से भी पूर्णतया मुक्त नहीं है और ऐसे अवसरों पर वह अपने प्रति भी पूरी तरह से निर्मम और कटु होता है। इसके अतिरिक्त कहानी में दादी और पिता की टिप्पणियाँ, पुराने मूल्यों और व्यवस्था पर क्षोभ भी प्रकट किया गया है। उपरोक्त कहानियों के अतिरिक्त ज्ञानरंजन की 'कलह', 'शेष होते हुए', 'सम्बन्ध' तथा ऐसी ही अनेक कहानियों में पुराने मूल्यों का विघटन दिखाई देती है।

20. 'फेस के इधर और उधर' मैं संकलित।

बदलते हुए ज़ीवन मूल्यों और पीढ़ियों के संघर्ष की स्थिति का परिचय मनहर चौहान की 'विपरीतीकरण' नामक कहानी में उपलब्ध होता है। हर पीढ़ी पिछली पीढ़ी से पूछती है, 'इसमें ग़लत क्या है, पिता जी ?' और हर पीढ़ी का उत्तर होता है, "मैं कुछ नहीं जानता....।" उपरोक्त कहानियों के अतिरिक्त सुधा अरोड़ा की 'आग' तथा 'मरी हुई चीज़', रामदरश मिश्र की 'लाल हथेलियाँ', अन्विता अग्रवाल की 'रबरबैंड', 'हथकंडा', 'धुँधले रंग' और 'एक्सीडेंट', सुरेश सिन्हा की 'सीढ़ियों से उतरता सूरज', 'दूधनाथ सिंह की 'दु:स्वप्न' तथा ऐसी ही अन्य कहानियों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि साठोत्तरी कहानियों के प्रायः सभी कहानीकारों ने प्राचीन रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और मूल्यों का प्रर्याप्त मात्रा में खंडन किया है।

प्रस्थापित परंपरागत मूल्यों का तिरस्कार करके, आधुनिक जीवन के लिए आधुनिकता की दृष्टि एवं नवीनता का बोध एक नये संकट-बोध को जन्म दे रहा है। आधुनिक व्यक्ति निस्सन्देह एक ओर परंपरागत मूल्यों से मुक्त होता जा रहा है, पर दूसरी ओर किसी भी नए मूल्य को पूर्णतः स्वीकृत नहीं कर रहा है। यह आजके ज़ीवन की विडम्बना है जोकि नये प्रकार के संकट-बोध को जन्म दे रही है। कमलेश्वर की एक कहानी 'दु:खों के रास्ते' का एक पात्र कहता है, " मेरे सामने कोई रास्ता भी नहीं रह गया है। अब तो यही लगता है कि सब मूल्यों की बलि देकर इस जीवन को तहस-नहस कर दूँ या इन्हीं दु:खों में घुल-घुलकर दम घुटने की अवस्था तक जीता रहूँ।........... पर वैसा अभी होगा नहीं, क्योंकि हम नैतिक रूप से भीरू हैं।"[21] इस कथन से यही स्पष्ट होता है कि आजका व्यक्ति नवीन मूल्यों से उत्पन्न स्थिति से दुर्निवार है। शायद उसके सामने ज़िन्दगी का कोई मूल्य नहीं है। प्राचीन मूल्यों का तिरस्कार करके वह नवीन मूल्यों से पूर्णतः समझौता करने में समर्थ नहीं हो पाया है। इसका कारण यह है कि हर मूल्य उसके व्यक्तित्व को दबाना चाहता है। अतः मूल्यहीनता की स्थिति से गुज़रना उसकी नियति है। ज़िन्दगी उसके हाथों से मानो फिसलती जा रही है। वह एक अजीब रिक्तता को भोगता हुआ अकेलेपन के अभिशाप को ढो रहा है। वह नहीं जानता कि युग का संत्रास उसे

21. मांस का दरिया : कमलेश्वर, पृ. 47-48

कहाँ ले जायेगा। इस स्थिति में आधुनिक व्यक्ति अतीत और भविष्य से बिल्कुल कटा हुआ है। अपने सीमित वर्तमान को भोगता हुआ अंधेरे में वह कुछ टटोल रहा है। उसके सामने केवल शून्य है, फिर भी उसकी जिजीविषा खत्म नहीं हुई है। 'नई कहानी' तथा साठोत्तरी कहानी में ऐसे व्यक्ति के बहुचर्चित संदर्भ हो रहे हैं।

४. स्वातंत्र्योत्तर कहानी : वैयक्तिक चिन्तन :

व्यक्ति समाज की ईकाई है। व्यक्तियों के समूह से ही समाज बनता है। समाज में आकर व्यक्ति उसका अभिन्न अंग बनता है—कुछ उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण और कुछ अपनी आवश्यकताओं के कारण..........। ये समाज शास्त्र के अकाट्य तथा प्रायः मान्यताप्राप्त नियम हैं। यहाँ हमारा अभिप्रायः इन नियमों की व्याख्या तथ विश्लेषण करना नहीं है। हमें यहाँ यह देखना है कि समाज में एक व्यक्ति की कोई स्वतंत्र सत्ता है या नहीं ? इस प्रश्न की व्याख्या भिन्न-भिन्न चिन्तकों तथा लेखकों ने अपनी-अपनी धारणाओं के अनुसार की है। इस धारणा के अनुसार ही कहानी साहित्य में भी एक व्यक्ति का अस्तित्व दिखाई देता है।

मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार व्यक्ति समाज में प्रवेश करके उसका अभिन्न अंग बन जाता है। समाज में उसका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं रहता। उसका जो कुछ भी कार्य-कलाप होगा, वह समाज-सापेक्ष तथा समष्टि-हित के लिये होना चाहिए. इसके लिये भले ही निजी स्वार्थ या निजी हित उसको कुचल ही क्यों न देने पड़ें। समाज में आकर उसका सारा निजी-हित समाज-हित में सुरक्षित होता है। ये मार्क्सवादी विचार हैं जोकि प्रग्रतिवादी साहित्य में पूर्णरूप से पल्लवित एवं पुष्पित किए गए हैं।

कहना न होगा कि यह विचारधारा एक तरह का आदर्शवादी दर्शन है। आदर्शवादी साहित्य में भी व्यक्ति निजी स्वार्थ की आहुति देकर समष्टिगत हितों के लिये काम करता है। चूँकि ये व्यक्ति प्रायः समाज में उपलब्ध नहीं होते हैं, इसलिये आजके जागरूक पाठकों को इस प्रकार के कहानी-पात्र कल्पित तथा अप्रामाणिक लगते हैं। प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों को देखकर यह लगता है कि उन्होंने यथार्थ के धरातल पर अपनी कहानियों का निर्माण किया, किन्तु कहानी में ज़रा आगे जाकर वे अपने पात्रों में आदर्शवादी पुट भरते थे।

इस प्रकार उनकी अधिकांश कहानियों में सुधारवादी दृष्टि रही है। उनकी 'यही मेरी मातृभूमि है', 'पंचपरमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी' तथा ऐसी ही अन्य अनेक कहानियों को देख सकते हैं, जहाँ कि समष्टिगत हितों की रक्षा के लिये निजी हित उपेक्षित किए गए हैं चाहे यह 'समाज' बड़ा समाज हो, संयुक्त परिवार हो या किसी भी प्रकार की सामाजिक संस्था हो। कहना न होगा कि इस सुधारवादी दृष्टि से 'कहानी' या अन्य किसी साहित्यिक-विधा का कलात्मक स्तर गिर जाता है और वह अब जीवन से बहुत दूर की चीज़ लगती है। इस बात का अहसास प्रेमचन्द को अपने जीवन के उत्तर-काल में हुआ होगा। उनकी 'कफ़न', 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी रचनायें इसी अहसास के परिणाम की उपज हैं।

प्रेमचंद के बाद 'यशपाल', 'राँगेय राघव', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा दूसरे हिन्दी के कहानीकारों ने मार्क्स की मान्यताओं से प्रभावित होकर प्रगतिवादी कहानी साहित्य का सृजन किया। इन्होंने भी साम्यवाद की मान्यताओं के अनुसार अपनी रचनाओं में समष्टिगत मूल्यों को ही महत्त्व दिया है। इसका परिणाम यह निकलता है कि व्यक्ति का निजी अस्तित्व कहीं आदर्शवाद के कुहासे में लुप्त हुआ है और कहीं फार्मूला के सीमित कठघरे में क़ैद होकर जीवन से बहुत दूर का आदमी दिखाई देता है। जीवन की भीड़ में वह अपने आपको खोया हुआ-सा पाता है और उसका निजी व्यक्तित्व अस्तित्वहीन हो गया है।

मनुष्यों की भीड़ में खो जाने का अहसास पश्चिम के विश्व-समरोत्तर चिन्तकों एवं साहित्यकारों को हुआ। अस्तित्ववाद की मान्यताओं के अनुसार उन्होंने समाज में 'व्यक्ति' के अस्तित्व को सर्वोपरि माना। अस्तित्ववादी दर्शन का मूल केन्द्रबिन्दु मनुष्य और उसका अस्तित्व है। इसके अनुसार मनुष्य अकारण ही संसार में ठूँसा जाता है और आने के पश्चातं वह जो कुछ भी बनता है, स्वयं बनता है। वह अपने कर्म-संघर्ष और चयन पर ही विश्वास रखकर आगे बढ़ता है। अस्तित्ववादी विचारधारा के अनुसार वह पूर्णरूपेण स्वतंत्र है। संसार में आने के पश्चात् वह चयन के द्वारा कार्य करके अपने अस्तित्व को अर्थ प्रदान करता है [22] जब तक मनुष्य स्वतंत्र रहकर चयन नहीं करता और उस चयन के

22. **"Freedom proves itself by my action rather than by my insight."**
— Philosophie : Karal Jaspers, p. 175

अनुसार कार्य नहीं करता, तब वह अस्तित्वहीन ही होता है। इसलिये जैस्पर्स कहते हैं कि, "चयन में मैं ही हूँ, यदि मैं चयन में विफल हो जाता हूँ तो मैं नहीं हूँ।"[23] जैस्पर्स की तरह सार्त्र ने भी मनुष्य की स्वातंत्र्य भावना को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। उनके ही शब्दों में, "यदि मनुष्य अपना सार स्वयं नहीं चुन सकता तो उसकी सारी स्वतंत्रता दासता से कम नहीं है।"[24]

इस विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि समाज से संलग्न होकर भी मनुष्य का अपना निजी अस्तित्व है, जिसे किसी भी स्तर पर नकारा नहीं जा सकता। वह एक ज़िम्मेदार प्राणी है, और समाज की भीड़ में उसका अस्तित्व उपेक्षित नहीं किया जा सकता। "उसके वैयक्तिक कार्य का प्रभाव समूह के कर्म पर पड़ता है और यदि कर्म से विमुख हो जाता है तब भी उसकी निष्क्रियता समूह के जीवन को प्रभावित करती है।"[25]

५. नई कहानी में वैयक्तिक-बोध:

युगानुकूल अस्तित्ववाद की इन मान्यताओं से प्रभावित होकर हिन्दी के नये कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में व्यक्तिगत मूल्यों को बहुत अधिक प्रधानता दी है। चाहे वह मोहन राकेश की कहानी 'मिस पाल' हो, या निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' हो, 'या शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' हो या मन्नू भंडारी की 'यही सच है'.......... इन सभी कहानियों में व्यक्तिगत मूल्यों का ही प्राधान्य है। यहाँ इसका अर्थ यह न लिया जाय कि वैयक्तिक मूल्यों के कहानीकार पूर्णतः व्यक्तिगत होकर समाज से कटे हुये हैं। व्यक्ति-चिन्तन के कहानीकार होकर भी इनकी रचनाओं के संदर्भ समाज से कहीं-न-कहीं जुड़ जाते हैं। निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, नरेश मेहता, कृष्ण बलदेव वेद आदि पूर्णतः वैयक्तिक मूल्यों के कहानीकार हैं, लेकिन फिर भी इनकी कहानियों के संदर्भ किसी-न-किसी रूप में समाज से जुड़ जाते हैं। दूसरी ओर मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, उषा प्रियंवदा, रामकुमार, शिवप्रसाद सिंह तथा ऐसे ही दूसरे कहानीकारों की

23. "In choosing I am, and if I am not, it is because of my failure to choose." — Ibid, Page 182
24. If the single fact that our essence has not been choosen by us shows hat all this freedom in particular actually covers over a total slavery." — J.P. Sartre : Being and Nathingness, P. 538.
25. शुद्ध कविता की खोज : रामधारीसिंह दिनकर, पृ. 120

रचनाओं में कहीं-कहीं समष्टिगत मूल्यों का प्राधान्य है, फिर भी वे समिष्ट से व्यक्ति की ओर ही प्रवृत्त हुए हैं।

मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों के विरोध में कई कहानीकारों के पात्र बोलते अथवा अनुभव करते दिखाई पड़ते हैं। 'राजा निरबंसिया' के रचनाकार कमलेश्वर बच्चनसिंह के सम्बन्ध में कहते हैं, "गहरे पड़ते अन्धेरे में उसका आकार धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और जगपती के सामने जब वह आकर खड़ा होता, तो वह बहुत विशाल होता।"[26] निर्मल वर्मा की 'धागे' कहानी की नायिका भी सामाजिक सम्बन्धों के विरोध में अपनी आवाज़ उठाती दिखाई गई है।[27]

समाज तथा दूसरे लोगों के साथ रहकर भी आजका व्यक्ति केवल 'व्यक्ति' रह गया है, निपट अकेला। वह समकालीन विभिन्न परिस्थितियों के दबाव के कारण तथा कुछ नवीन मान्यताओं के प्रभाव के कारण जीवन की समस्याओं, प्रश्नों, यहाँ तक कि अप्रश्नों को सुलझाने अथवा उलझाने के लिये निपट अकेला है। कभी वह जीवन के प्रति आस्थावादी बन जाता है, तो कभी अनास्था ही उसको घेर लेती है। चूँकि जीवन में मुख्य रूप से व्यथा, वेदना, पीड़ा, निराशा, विसंगति, एकाकीपन और शून्यता आदि प्रत्ययों का ही समावेश होता है, इसलिये स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों के अधिकांश पात्र भी जीवन के प्रति अनास्थावादी दृष्टिकोण को अपनाये हुए हैं। इस दृष्टिकोण के बावजूद वे अस्तित्व की मजबूरी के कारण जीवन की यातनायें झेल रहे हैं।

मोहन राकेश की कई कहानियों में हमें ऐसे पात्र मिलते हैं जो अकेलेपन का भार सहने के लिये अभिशप्त हैं। उनकी सुप्रसिद्ध कहानी 'मिस पाल' की मिस पाल का अटल विश्वास है कि आजीवन न उसे प्यार ही मिलेगा, न धन और न ही मशहूरी। इसलिये अपने चिर-परिचित माहौल तथा पाँच-सौ की नौकरी छोड़कर वह दूर जाकर एकान्त जीवन व्यतीत करने के लिये चली जाती है। किन्तु इसके बावजूद वह (निरुद्देश्य ही सही) जीवन जी रही है। उपरोक्त कहानी के अतिरिक्त मोहन रोकश की 'अपरिचित', 'एक और ज़िन्दगी', 'उर्मिल जीवन' तथा ऐसी ही अन्य कहानियों में आजके व्यक्ति के एकाकीपन, अजनबीपन, शून्यता, व्यथा आदि प्रत्ययों का चित्रण हुआ है।

26. कमलेश्वर : श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 39
27. पिछली गर्मियों में : निर्मल वर्मा, पृ. 39

धर्मवीर की कहानी 'धुआँ' का नायक शेष संसार से दूर होता दिखाई पड़ता है या संसार ही उससे दूर होता दिखाई देता है।[28] इसी प्रकार उनकी 'मरीज़ नम्बर सात' का नायक अपने परिवेश की वसंगतियों से इतना तग आ चुका है कि वह मरना चाहता है। जीवन में वह निराशा से इतना घिर गया है कि अपने आपको निपट अकेला जानकर वह इससे तटस्थ होकर मरना चाहता है।[29] 'भारती' जी की तरह राजेन्द्र यादव की कहानियाँ भी वैयक्तिक मूल्यों की कहानियाँ हैं। उनकी कई कहानियाँ के पात्र भी मानव-जीवन में व्याप्त विसंगति, पीड़ा, निराशा, और शून्यता जैसी स्थितियों का अनुभव करते देखे गये हैं। इस संदर्भ में उनकी 'टूटना', 'एक कमजोर लड़की की कहानी', 'भविष्य वक्ता' आदि कहानियों को देखा जा सकता है। 'एक कमज़ोर लड़की की कहानी' की 'सविता' का शून्यता-सम्बन्धी बोध इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है, ''सविता को लगा जैसे उसका मनोबल कहीं हवा में घुलकर खोता जा रहा है, जैसे वह हिप्नोटाइज़ हो रही है, जैसे वह धीरे-धीरे डूबती जा रही है--जैसे एक विस्मृति का अंधियारा धीरे-धीरे चेतना पर उतर रहा है—सब कुछ शान्त सुनसान।''[30]

इसी प्रकार कमलेश्वर की कहानियों में भी अकेलापन उनके व्यक्तियों की चेतना को घेरे हुए है। उनमें न केवल कसक और टीस है, बल्कि सूनापन, अकेलापन टीस और विखराव भी है। 'खोई हुई दिशाएँ' में संसार की भीड़ में एकाकीपन और अजनबीपन का आभास अनुभूति के स्तर पर हुआ है। महानगरों की भीड़ में लोग देखने तथा गिनने के लिये हैं, किन्तु मनुष्य अन्ततः अकेला है। कमलेश्वर की उपरोक्त कहानी के अतिरिक्त उनकी निम्नलिखित

28. ''मैं एक ऐसी विशाल बस्ती में खड़ा हूँ जहाँ लोग सहसा पागल हो गये हैं, हिंसक पशुओ की तरह चीत्कार करते हुए आग लगाते हुए घूम रहे हैं और धीरे-धीरे मेरे गले में, आँखों में, दिमाग में, नसों में, आत्मा में भयानक काला कडुआ धुआँ भर गया।
– चाँद और टूटे हुए लोग : धर्मवीर भारती, पृ. 85
29. ''वह जिंदगी से तटस्थ हो चुका था। जीवन और मौत एक-सी है। उसका दर्द और औरत का दर्द एक है। किसी-न-किसी गहराई में उतरकर तमाम जिन्दगी एक है। अगर वह मर जाय तो औरत को और मर जाय तो उसको अपने दर्द से छुटकारा मिल जाय।
– चाँद और टूटे हुए लोग : धर्मवीर भारती, पृ. 36
30. राजेन्द्र यादव : श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 13

कहानियों में भी वैयक्तिक मूल्यों का प्राधान्य है, जहाँ कि व्यक्ति शून्यता, निराशा, व्यथा तथा एकाकीपन के बोध से घिरे हुए हैं :– 'राजा निरबंसिया', 'पीला गुलाब', 'युद्ध', 'दुःखों के रास्ते', 'जो लिखा नहीं जाता' इत्यादि।

निर्मल वर्मा की बहुचर्चित कहानी 'परिन्दे' 'वैयक्तिक मूल्यों की कहानी है। प्रस्तुत कहानी की नायिका 'लतिका' के माध्यम से लेखक ने अकेलेपन और सूनेपन की परतें खोली हैं। एक पगली-सी स्मृति, एक उद्‌भ्रान्त भावना लिये हुई लतिका यात्रा के लिये सबका सामान बंधवाती है लेकिन स्वयं होस्टल के उदास वातावरण में टिकी रहती हैं। चाहकर भी वह अतीत की स्मृतियों से मुक्त नहीं हो पाती। पूरी कहानी में मानव की अनिश्चित नियति का संकेत देकर अजनबीपन और एकाकीपन की अनुभूति को गहराया गया है। यों तो निर्मल वर्मा वैयक्तिक मूल्यों के ही कहानीकार हैं। उनके पात्र भूत और भविष्य से कटकर वर्तमान क्षण में जी रहे हैं और वह भी समाज से कटकर। निर्मल वर्मा की निम्नलिखित कहानियों में भी व्यक्तिपरक चिन्तन के स्पष्ट संकेत मिलते हैं :– 'पिछली गर्मियों में' 'डेढ़ इंच ऊपर', 'लवर्स', 'लंदन की एक रात', 'कुत्ते की मौत' इत्यादि।

इसके अतिरिक्त उषा प्रियंवदा की 'मछलियाँ', 'वापसी' और 'एक कोई दूसरा', मन्नू भंडारी की 'क्षय' 'तीसरा आदमी' तथा 'यही सच है', कृष्ण बलदेव वेद की 'मेरा दुश्मन', सोमा वीरा की 'दो आँखें वाले चहेरे' आदि कहानियाँ वैयक्तिक बोध पर आधारित हैं।

६. साठोत्तरी हिन्दी-कहानी में वैयक्तिक-बोध :

साठोत्तरी कहानीकारों में अधिकांश लेखक मूलतः व्यक्तिगत मूल्यों के कहानीकार हैं, जिनमें ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, सुधा अरोड़ा, प्रणवकुमार, प्रयाग शुक्ल, पानू खोलिया, अन्विता अग्रवाल, से. रा. यात्री, शेखर जोशी, छत्रपाल, सत्येन कुमार, गंगाप्रसाद विमल, जितेन्द्र भाटिया, वल्लभ सिद्धार्थ आदि प्रमुख हैं। दूसरे कई कहानीकारों ने समष्टिगत मूल्यों पर आधारित कहानियों की सर्जना तो की है, किन्तु वे भी समष्टि से व्यष्टि की ओर ही गये हैं। सुरेश सिन्हा, रवीन्द्र कालिया, मनहर चौहान, रामदरश मिश्र, शानो लक्ष्मीकान्त वर्मा तथा ऐसे ही दूसरे कहानीकारों की कई रचनायें इसी प्रकार की हैं।

साठोत्तरी हिन्दी कहानी-साहित्य में भी व्यक्ति को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनका पात्र अपने अस्तित्व का विकास करने में नितान्त अकेला है। वह अपने ही स्वतंत्र निर्णयों द्वारा अपने अस्तित्व को अर्थ प्रदान करता है। इस संदर्भ में प्रयाग शुक्ल की 'आदमी' तथा महीपसिंह की 'युद्धमान' नामक कहानियों के कई स्थल देखे जा सकते हैं।[31]

साठोत्तरी कहानीकार का नायक भूत और भविष्य से कटकर वर्तमान के क्षणों में जीता अपनी समस्याओं तथा प्रश्नों से जूझ रहा है। अपना रास्ता निकालने में वह वैयक्तिक स्तर पर काम करने में संलग्न है। इस व्यक्ति को निराशा, व्यथा, विसंगति और शून्यता जैसे प्रत्ययों ने घेर लिया है। इन स्थितियों को भोगना अब मानव जीवन की नियति बन गई है। आजका कहानीकार भी युग के जिस अकेले आदमी को अनुभूति के स्तर पर दिखाता है, उसका इन स्थितियों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता जाता है। वास्तव में ''समसामयिक संवेदना में विराग, कुंठा, विसंगति सब जीवित तत्त्व हैं। इन मानसिक स्थितियों को केवल वे नकार सकते हैं, जिनको जीवन-सम्बन्धी समस्याओं में कोई रस नहीं है। जो समाज इन आधारभूत प्रश्नों को न अनुभव के धरातल पर, न चिन्तन के धरातल पर ही स्वीकार करता है, वह समाज जीवित नहीं है।''[32]

साठोत्तरी कहानीकारों में ज्ञानरंजन ने वर्तमान जीवन के यथार्थ को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। आजकल परिवार महज़ देखने तथा दिखाने के लिये हैं जबकि वे अन्दर-ही-अन्दर टूटे हुये हैं। आज परिवार में व्यक्ति एकाकीपन में घुटा-घुटा जीवन व्यतीत कर रहा है। उनकी कहानी 'शेष होते हुए' में ज्ञानरंजन ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि परिवार के

31. (क) ''सारी चीजों के साथ होते हुए भी आदमी कितना अकेला है............ इतनी बड़ी दुनिया की सारी चीजों से संबंधित होते हुए भी वह केवल अपने दुःख-सुख के अनुसार अपनी दुनिया को रूप दिया करता है।''
(ख) ''कोहली साहब को लगा) ये सब लोग उनके जगत् को बाँट लेंगे, नोच-खसोट लेंगे। वह जगत् जो सिर्फ उनका है, एकमात्र, उनका। जिसमें वे किसी की हिस्सेदारी नहीं चाहते।''
— घिराव : महीपसिंह, पृ. 72
32. समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि—सम्पादक डॉ. धनंजय, पृ.

वात्सल्यपूर्ण रिश्ते कबके मर चुके हैं। वहाँ के सभी सदस्य अपने में सिमटे हुए हैं और एक दूसरे से अलग और कटे पड़े हैं। इसी प्रकार 'फेन्स के इधर और उधर' में दो पीढ़ियों के अन्तर के साथ-साथ व्यक्ति के अजनबीपन तथा अकेलेपन को भी दिखाया गया है।

दूधनाथ सिंह की कहानी 'आइसबर्ग' व्यक्तिगत कहानी है जहाँ कि कहानी का नायक अपने परिवार तथा सम्बन्धियों से अलग होकर एकान्त जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त-सा दिखाई देता है। कहानी का नायक प्रथम रात्रि के बाद ही अपनी पत्नी से अलग हो जाता है और अपना घर-बार छोड़कर अकेला जीवन व्यतीत करने जाता है। इस अकेलेपन की रिक्तता को पाटने के लिये वह कई रिश्तेदारों को अपने यहाँ बुला लेता है। उनके आने से कहानी-नायक यही जान गया है कि उसके सगे-सम्बन्धियों को खाने-पीने तथा मौज करने से गरज़ है, इसलिये वह पुनः अपने एकाकीपन से उत्पन्न निराशा तथा व्यथा का अनुभव करते लगता है। 'आइसबर्ग' के अतिरिक्त दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात' 'सुखान्त' तथा ऐसी ही अन्य अनेक कहानियों में व्यक्तिगत बोध के दर्शन होते हैं जहाँ कि व्यक्ति अजनबीपन, एकाकीपन, शून्यता, विसंगति, और निराशा जैसी स्थितियों से गुजरते हैं।

सुरेश सिन्हा की कई कहानियाँ मानव-जीवन की विसंगति, टूटन, व्यथा और शून्यता आदि का बोध कराती हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'कई आवाज़ों के बीच' में स्वयं अपने आपसे कटे हुए ऐसे व्यक्तियों का चित्रण किया गया है जो अपनी वेदना और पीड़ा को दबाने का असफल प्रयत्न करते हुए बस जीवन जी रहे हैं। कहानी में बार-बार निराशाजनक शब्दों का प्रयोग हुआ है, ''यार ज़िन्दगी में कुछ रहा नहीं, ''वी आर डेड पीपुल'।'' [33] इसी प्रकार जितेन्द्र भाटिया की कहानी 'रक्तजीवी' में एक ऐसे व्यक्ति को दिखाया गया है जो जीवन की भीड़ में अपने आपको नितान्त अकेला समझता है। जेब-खर्च के पैसे जुटाने के लिए उसको अपना लहू बेचना पड़ता है।

उपरोक्त कहानियों के अतिरिक्त जिन साठोत्तरी कहानियों में वैयक्तिक चिन्तन का बोध होता है, उनमें से कई ये हैं :— 'एक भटकती हुई

33. 'कई आवाजों के बीच' में संकलित।

मुलाकात' (रामदरश मिश्र), 'शवयात्रा' 'प्रस्थान' तथा साथ (श्रीकान्त वर्मा) 'सिर्फ एक दिन' (रवीन्द्र कालिया), 'पेपरवेट' (गिरिराज किशोर), 'स्टिल लाइफ' (राजकमल चौधरी) 'ललियादित्य के मार्त्तंड' (छत्रपाल) 'श्मशान' (दामोदर सदन) आदि।

संक्षेप में स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार, जिसमें नई कहानी-लेखक तथा साठोत्तरी कहानी-लेखक दोनों सम्मिलित हैं, आधुनिक जीवन की गहराइयों में डुबकियाँ लेकर मनुष्य के नग्न यथार्थ को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते है। उसका व्यक्ति जीवन की यातनाओं को झेलता हुआ अस्तित्व की रक्षा करने के लिये जी रहा है। वह जीवन के एकाकीपन के बोध से घिरा हुआ है। उसका नायक संकट-बोध की प्रक्रिया से गुज़रता जा रहा है। वह मृत्यु, संत्रास तथा भयावहता से आक्रान्त है। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि आजके व्यक्ति के इस अस्तित्व-संकट का उत्तरदायित्व किस पर है। निराशा-व्यथा, विसंगति, जीवन के संत्रास आदि ने उसे क्यों निष्क्रिय बनाया है ?—इसके लिये आजका व्यक्ति स्वयं ज़िम्मेवार नहीं है। ज़िम्मेवार हैं वे परिस्थितियाँ तथा ऐतिहासिक संदर्भ, जिनके कारण हमें आधुनिक दृष्टि मिली है। आधुनिक दृष्टिकोण के विकास के साथ ही संकट-बोध की तीव्रता प्रतिभासित होने लगती है और आजका व्यक्ति इस स्तर पर पहुँचा है जहाँ कि वह दूसरों से कटा हुआ है और उसे अब निराशा तथा भय से ही साक्षात्कार करना पड़ता है।यों तो अपने अस्तित्व के लिये वह स्वयं ज़िम्मेवार नहीं है, क्योंकि वह अपनी मर्ज़ी से पैदा नहीं हुआ है, प्रत्युत ठूँसा गया है। इसीलिये अस्तित्व के संकट को उसे व्यक्तिगत स्तर पर भोगना पड़ता है।

आधुनिक भारत की युवा पीढ़ी को जो अकेले-२ घुट-घुटकर जीवन भोगना पड़ता है, वह अत्यंत भयंकर है। वह हर लिहाज़ से मृत्यु और संकट के भयावह वातावरण से आक्रांत है। जीकर भी वाह बांर-बार मर रहा है जोकि प्राकृतिक मौत से भी कहीं भयावह तथा कष्टदायक है। इसलिये पुराने जीवन-मूल्यों को शिरोधार्य करने की उसमें कोई प्यास नहीं है और न ही वह नवीन मूल्यों को स्थापित करने की खेज में ही है। इस प्रकार वह जीवन-सूत्रों से कटा हुआ है। देखने-दिखाने के लिए आजका व्यक्ति स्वाधीन तो है किन्तु वैचारिक तथा मानसिक स्तर पर उसकी स्वाधीनता खत्म हो चुकी है। वह अपनी ही समस्याओं तथा प्रश्नों में इतना उलझा है कि आधुनिक पीढ़ी संत्रास तथा यातना का अनुभव कर रही है। वह बेहूदी ज़िन्दगी व्यतीत करने के लिये अभिशप्त-सी है।

अस्तित्व की मजबूरी के बावजूद अबकी पीढ़ी निष्क्रिय नहीं है। वह मानसिक, वैचारिक तथा बाहरी यातनाओं को झेलने की चुनौती स्वीकार किये हुई है। वास्तव में इसी स्वीकृति में ही आजके जीवन का चेतन तत्त्व अथवा रहस्य छिपा हुआ है।

पीछे जिन कहानियों में हमें युग-संत्रास, क्षणवादिता, भयावहता, अकेलापन, अजनबीपन जैसी स्थितियों का बोध हुआ, इसके अतिरिक्त और भी कई कहानियाँ हैं जिनमें यथार्थ के धरातल पर इसका चित्रण हुआ है। इनमें से कई कहानियाँ इस प्रकार हैं : मोहन राकेश की 'ज़ख्म', राजेन्द्र यादव की 'दायरा', दूधनाथ सिंह की 'सपाट चेहरे वाला आदमी', निर्मल वर्मा की 'जलती झाड़ी', गिरिराज किशोर की 'अलग अलग कद के दो आदमी', 'श्रीकान्त वर्मा की संवाद आदि।

७. निष्कर्ष : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी जिन्दगी के बीच, आसपास और उसी समानान्तर चलने वाली कहानी है। इसके रचयिता ने अत्यंत निकट से जो कुछ भोगा; उसका प्रस्तुतीकरण उसने बड़ी ईमानदारी और प्रामाणिक अनुभूति के निकश पर किया है। उसने जिस युगीन चिन्तन-प्रणाली को हमारे सामने रखा, वह पूर्व-निर्धारित न होकर युग-सापेक्ष एवं समाज-सापेक्ष है, उससे इतर नहीं। आजका कहानीकार जिस चिन्तन को हमारे सामने रखता आया है, वह एक महर्षि की तरह समाज से ऊपर उठकर उसको प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि समय की भीषणताओं एवं यातनाओं को भोगकर वह आम आदमी की तरह सोचने-समझने के नवीन आयाम हमारे सामने रखता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के चिन्तन की यह एक मुख्य विशेषता है। व्यक्ति समाज की इकाई है। समाज का अभिन्न अंग होकर भी उसका अपना अलग अस्तित्व है। व्यतीत कहानियों में एक व्यक्ति की निजी सत्ता प्रायः लुप्त हुई थी। प्रेमचंद के पात्र व्यक्तिपरक न होकर टाइपगत हुआ करते थे। वे व्यक्ति का नहीं, एक विशिष्ट समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण यशपाल तथा दूसरे कहानीकारों के पात्रों का व्यक्तिगत हित अथवा चिन्तन समष्टिपरक होता था। स्पष्ट है कि इन पात्रों का निजत्व प्रायः लुप्त हो जाता था। हिन्दी की नयी चेतना के कहानीकारों ने इस बात का अनुभव बहुत बारीकी से किया। उनके पात्र प्रायः व्यक्तिगत होते हैं, उनका दुःख दर्द, अनुभव आदि नितांत अकेला होता है। ऐसा होकर भी नई कहानी का वैयक्तिक-बोध कभी-कभी

समष्टिगत होता है, व्यक्ति का समाज से सलंग्न होने के कारण। अंतः पुरानी रचनाओं में बिम्ब-ग्रहण की सृष्टि भी नहीं हुआ करती थी, क्योंकि बिम्ब समाज का न होकर व्यक्ति-विशेष का हो सकता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी ने व्यक्ति के अस्तित्व को खोने नहीं दिया है। इसके बावजूद इसमें व्यष्टि के चिन्तन से समष्टि-चिन्तन के संकेत प्रायः दिये गये हैं।

विष्णु प्रभाकर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

—दुर्गा बख्शी

विष्णु प्रभाकर मुज़फ्फर नगर जिले के मीरापुर गाँव के एक सम्पन्न हिन्दू परिवार में २१ जून सन् १९१२ को उत्पन्न हुए । इन्होंने अपने बालपन के ग्यारह वर्ष अपने माँ-बाप के साथ इसी गाँव में बिताये। इन के माता-पिता ने पहले इन का नाम केवल विष्णु रखा था। इस के कई कारण थे। सुधारवादी युग होने के कारण पुराने नामों के स्थान पर अच्छे नाम रखने की परिपाटी चल पड़ी थी। विष्णु जी के पिताजी धर्म-कर्म में बहुत रुचि रखते थे अतः देवी देवताओं और महापुरुषों के नाम पर अपने संतान का नाम रखने में वे रुचि रखते थे। इसी कारणवश विष्णु जी का नाम विष्णु रखा गया। विष्णु जी के नामकरण से सम्बन्धित कई घटनाएँ हैं। उनं का नाम विष्णु प्रभाकर कैसे पड़ा, यह एक मनोरंजक घटना है। पहले वे विष्णुदत्त के नाम से जाने जाते थे। डॉ. कमलेश के साथ हुई भेंटवार्त्ता में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा :– "और जब मैं अपने मामा के पास पंजाब चला गया, तो वहाँ मेरा नाम विष्णु गुप्त हो गया। मामाजी आर्य समाजी थे इसलिए उन्होंने यह नाम रख दिया। 'गुप्त' मेरे वर्ण का द्योतक है। सो दसवें दर्जे तक मैं विष्णु गुप्त रहा। लेकिन जब परिस्थितिवश मुझे हिसार की सरकार गोशाला में नौकरी करनी पड़ी तब दफ्तर में एक और 'गुप्त' होने के कारण गड़बड़ होगी, इस आशंका से 'विष्णु गुप्त' से मैं विष्णु दत्त बन गया."[1] परन्तु दत्त नाम इन्हें कभी अच्छा नहीं लगा। अतः प्रभाकर की परीक्षा उत्तीर्ण करते ही अपने नाम के साथ इस उपाधि को जोड़ दिया। आज

1. 'मैं इन से मिला' किस्त (2) डॉ. पिद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
प्रकाशक : आत्माराम एण्ड सन्ज़ दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : सन् 1952
पृष्ठ : 226

भी ये महान पुरुष विष्णु प्रभाकर के नाम से विख्यात है। विष्णु प्रभाकर शिक्षा काल में ही सारी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद हिन्दी, संस्कृत, इतिहास, धर्म-शिक्षा आदि विषयों में बहुत होशयार थे। इसलिए वाद-विवाद में सबसे आगे रहते थे। अभिनय में भी कुशल थे। इन्होंने पारितोषिक भी पाये और गुरुजनों का स्नेह भी पाया। विष्णु जी का बचपन विषम परिस्थितियों में बीता। इन्होंने अपनी पढ़ाई भी विषम परिस्थितियों में पूरी की। इन्होंने अपने बाल्यकाल में ही अपनी माँ की प्रेरणा से कई पुस्तकें पढ़ ली थीं। अतः वे अपनी माँ को ही अपना आदि गुरु मानते हैं।

हिसार में अपनी प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करते ही वहीं जीविका के निमित्त पशु-पालन फार्म में सरकारी नौकर हो गये। सरकारी नौकरी के समय ही प्रभाकर ने बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। धीरे-धीरे उनके हृदय में साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई, और जब नौकरी से मन उचाट हुआ तो इस्तीफा दे कर लेखनी का सहारा लिया अतः जीविका के ख्याल से सन् १९४४ में वे दिल्ली आ गये। जिन दिनों वे पशुपालन में किरानी थे, उन दिनों सवेरे आठ बजे से रात आठ बजे तक उन्हें काम करना पड़ता था। इस के अतिरिक्त आर्यसमाज की गतिविधियों में भाग लेते थे। परोक्ष रूप से उन का सम्बन्ध काँग्रेस से भी था। एक नाटक मंडली में भी काम करते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ परोक्ष रूप से जुड़ने के कारण पुलिस की निगरानी शुरू हो गई।

विष्णु प्रभाकर जी को पहचानने की एक विशेष वेशभूषा है–खादी की नुकीली टोपी, खादी का पाजामा, कुर्ता और जवाहर जैकेट। सभी कुछ साफ शिफाफ और शिकनविहीन। चेहरे पर चमक। रँग गोरा, नक्श तीखे आवाज़ बंधी हुई और शब्द टिका-टिका कर बोलने का अंदाज़। धार्मिक संकीर्णताएँ इन्होंने होश संभालते ही छोड़ दी थीं। लेकिन धर्म के प्रति जुड़ाव अब तक है। आकाशवाणी में ड्रामा प्रोड्यूसर भी रहे।

विष्णु जी ने खादी को विश्वास के रूप में ग्रहण किया है। उन की सहजता और महानता का रहस्य उन की गहरी आस्था एवं भावना से जाना जा सकता है। धर्म और जाति के नाम पर जो कुछ इन्होंने देखा, मानव चरित्र की जिन नीचाइयों और गिरावटों को उन्होंने अनुभव किया वे कालान्तर में उन के साहित्य की प्रेरक शक्तियाँ बनीं। इसलिए वे उत्कृष्ट मानवता की खोज में व्यग्र

और व्यस्त हो उठे। इन के पहले उपन्यास में इसी की कुछ झलक देखी जा सकती है।

विष्णु प्रभाकर जी के लेखन का मूल उनके अन्तर्मन की व्यथा में निहित है। अपनी घुटन को जब वे कागज़ पर व्यक्त करते थे तो उन्हें एहसास होता था कि उन के दिल की घुटन कम हुई और इसी एहसास के कारण उन्होंने लिखना भी प्रारम्भ किया। विष्णु प्रभाकर जी ने जब से लेखनी को अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाया तब से वे सफल एकाँकीकार तथा नाटककार के रूप में अधिक प्रसिद्ध हुए। और जो कुछ वे भोग रहे हैं, उन के साहित्य में उसी भोगे हुए सत्य का मार्मिक वर्णन है। विष्णु जी की रचनाओं में सर्वत्र पाठकीय संवेदनाओं की प्रतिध्वनि व्याप्त है। मीरापुर गाँव और हिसार कस्बे के संस्कार कहीं-न-कहीं उन के भीतर है, जिसे हटा कर-दबा कर वे नगर संस्कृति और मध्यवर्गीय जीवन को अपने साहित्य में स्थान देने में सचेष्ट रहते हैं। विष्णु प्रभाकर का व्यक्तित्व बहुमुखी है। वे स्वयं जात-पात पर विश्वास नहीं करते। उन के व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण बात आर्यसमाज से प्रभावित्त होने की है। इस बात का परिचय हमैं उन के 'निशिकान्त' उपन्यास से प्राप्त होता है। धीरे-धीरे उन की आस्था आर्यसमाज से निरन्तर हटती गई। वे हिन्दू-मुस्लमान जैसे मतभेद को दिल से कभी नहीं मानते थे। इन सब बातों का परिचय हमैं लेखक के इन शब्दों द्वारा मिलता है : " लेकिन यह सच है कि तब तक हम सब हिन्दू मुसलमान मिल जुल कर रहते थे। मेरे साथी मुसलमानबच्चे मेरे घर आते, मेरी माँ उन्हें खाना खिलाती पर उन के जाने के बाद उन के झूठे बर्तन आग से साफ किए जाते। हम उन के घरं जाते तो हिन्दू हलवाई हमारे लिए मिठाई लाता। घर की महिलाएँ उसे कभी नहीं छूती। कैसे प्यार से सहेज रखा था हम ने इस पाप को। ....मेरा मन कुछ प्रश्नों से जूझता कि हरिजन मुझे छू भी ले तो क्या हो जाएगा। .... मैं जब तक हरिजनों से जान-बूझ कर चिपट जाता।...." [2]

विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व की एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि वे घुमक्कड़ स्वभाव के हैं। वे कभी एक स्थान पर नही टिकते हैं। घुमक्कड़ होने

2. 'मैं मेरा समय और रचना प्रक्रिया–विष्णु प्रभाकर
'संचेतना पत्रिका'–सं. डॉ. महीपसिंह
प्रकाशन वर्ष–सन् 1984

के कारण उन के अनुभवों के भंडार में भी बढोतरी होती रही है। घुमक्कड़ होने के कारण ही वे 'आवारा मसीहा' जैसे ग्रन्थ का निर्माण कर सके।

विष्णु जी पुरुषार्थ और स्वालम्बन के साक्षात मूर्त रूप हैं। उन की साठ से अधिक पुस्तकें इन के अध्ययन और अध्यवसाय की मूर्त प्रतिमायें हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक, एकाँकी, रेखाचित्र, संस्मरण, निबन्ध, यात्रावृत, बाल-साहित्य आदि विधाओं में उन का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वास्तव में लेखक ने सन् १९३१ से ही लिखना आरम्भ कर दिया था। इन की पहली कहानी 'दीवाली के दिन' 'हिन्दी मिलाप' नम्बर १९३१ में लाहौर के 'दिवाली अंक' में छपी थी। 'अलंकार' पत्रिका में उन की दो कहानियाँ "छाया" और "मैं" प्रकाशित हुईं।सन् १९३६ में 'संघर्ष के बाद' नामक कहानी लिखी। सन् १९३६ के के बाद जितनी भी कहानियाँ लिखीं वे इस प्रकार हैं :– 'रहमान का बेटा' (सन् १९४७), 'जिन्दगी के थपेडे' (सन् १९५२), 'धरती अब भी घूम रही है' (सन् १९५९), 'सफर के साथी' (सन् १९६०), 'खण्डित पूजा' (सन् १९६०), 'साँचे और कला'.(सन् १९६२), 'मेरी तैंतीस कहानियाँ' (सन् १९६७), 'पुल टूटने से पहले' (सन् १९७७), 'मेरी प्रिय कहानियाँ, (सन् १९८०), 'मेरा वतन' (सन् १९८०), 'खिलौने' (सन् १९८१), 'मेरी लोकप्रिय कहानियाँ (सन् १९८१)।

एकाँकीकार के रूप में विष्णु जी सफल रहे हैं। उन के कई एकाकी प्रकाशित हुए हैं जिन में उल्लेखनीय हैं :– 'प्रकाश और परछाई' (सन् १९५६) 'बारह एकाँकी' (सन् १९५८), 'दस बजे रात' (सन् १९५९), 'ये रेखायें ये दायरे' (सन् १९६३), 'ऊँचा पर्वत गहरा सागर' (सन् १९६६) 'मेरे श्रेष्ठ रंग एकाँकी' (सन् १९७१), 'इन्सान और अन्य एकाँकी' (सन् १९७४), 'तीसरा आदमी' (सन् १९७४), 'नए एकाँकी' (सन् १९७६), 'डरे हुए लोग' (सन् १९७८), 'मैं भी मानव हूँ' (सन् १९८२)। इन के अतिरिक्त पौराणिक एवं ऐतिहासिक एकाँकी 'अशोक', 'परिवंदन', 'कंस' आदि हैं। प्रचारात्मक एकाँकी 'यू.एन.ओ. और यूनेस्को', 'स्वतन्त्रता का अर्थ' 'काम, तथा कश्मीर' हैं।

इन की चर्चित नाटक नाट्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं :– 'नव प्रभात (सन् १९५१ तथा सन् १९७३ में तेरहवाँ संस्करण), 'समाधि' (सन् १९५२), 'डॉक्टर' (सन् १९६१, सन् १९७९), 'युगे-युगे क्रान्ति' (सन् १९६९, सन्

१९७८), 'टूटते परिवेश' (सन् १९७४), 'कुहासा और किरण' (सन् १९७५), 'टगर' (सन् १९७७), 'बन्दिनी' (सन् १९७९), 'सत्ता के आर पार' (सन् १९८१), 'अब और नहीं (सन् १९८१), 'गांधार की भिक्षुणी' (सन् १९८२), आदि।

विष्णु जी ने दो रूपान्तर और एक रूपक संग्रह भी लिखा है। 'चन्द्रशेखर' (सन् १९५२), 'होरी' (सन् १९५५), 'स्वाधीनता संग्राम' (सन् १९५०), दो अनूदित संग्रह 'एव.एन. लिंकन' (सन् १९६२) 'विद्रोह' (सन् १९६२) भी छपे हैं।

विष्णु जी ने छः उपन्यास भी लिखे हैं। 'निशिकान्त' (सन् १९५५), 'तट के बन्धन' (सन् १९५८), 'स्वप्नमयी' (सन् १९५६), 'दपर्ण का व्यक्ति' (सन् १९५८), 'परछाई' (सन् १९६८), और 'कोई तो' (सन् १९८०) में प्रकाशित हुआ।

विष्णु प्रभाकर जी ने कई महान् व्यक्तियों की जीवनियाँ भी लिखी हैं। 'शरतचन्द चट्टोपाध्याय' की जीवनी लिखने पर वे समस्त जीवनी साहित्य में विख्यात हुए हैं। इन की जीवनी 'आवारा मसीहा' के नाम से लिख दी है। यह (सन् १९७४) में लिखी है। इस के अतिरिक्त 'अमर शहीद भंगतसिंह (सन् १९७६), 'सरदार वल्लभ भाई पटेल' (सन् १९७६) में प्रकाशित हुए।

विष्णु जी ने विचार निबन्ध भी लिखे हैं। (एक निबन्ध 'जन समाज और संस्कृति' एक समग्र दृष्टि' (सन् १९८१), तथा दूसरा निबन्ध 'क्या खोया क्या पाया' (सन् १९८२) में प्रकाशित हुए।

संस्मरण रेखाचित्र की विधा भी इन से अछूती न रही। उन के संग्रह इस प्रकार हैं :– 'जाने अंजाने' (सन् १९६०), 'अंजाने देश में अंजान साथी' (८ जनवरी १९६१ के साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित), 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ' (सन् १९६५), 'जुमना गंगा के नैहर में (सन् १९६४), 'हँसते निर्झर दहकती भट्टी' (सन १९६७), 'ज्योतिपुंज हिमालय' (सन् १९८२), 'मेरे अग्रज मेरे मीत' (सन् १९८३), 'समानांतर रेखाएँ' (सन् १९८३)।

इन के अतिरिक्त इन्होंने बाल कहानियाँ एवं बाल नाटक भी लिखे हैं जिनमें से कुछ बाल नाटक इस प्रकार हैं :– 'मोटे लाला' (सन् १९५५), 'रामू

की होली' (सन् १९५९), 'दादा की कचहरी' (सन् १९५९), 'कुन्ती के बेटे' (सन् १९५८), 'अभिनय एकाँकी' (सन् १९६९), 'अभिनय एकाँकी' (सन् १९६८), 'हड़ताल' (सन् १९७२), 'नूतन बाल एकाँकी' (सन् १९७५), 'जादू की गाय' (सन् १९७२)' आदि। बाल कहानियों में से प्रमुख हैं : 'जब दीती भूत बनी' (सन् १९६०), 'हीरे की पहचान' (सन् १९७६), 'घमण्ड का फल' (सन् १९७३), 'मोतियों की खेती' (सन् १९७६), 'पाप का घड़ा (सन् १९७६), 'तपोवन की कहानियाँ (सन् १९७६), जीवन पराडा' (सन् १९६३), 'सरल पंचतंत्र' (सन् १९५५) आदि।

विष्णु जी की कुछ अन्य अप्रकाशित रचनाएँ भी है। जैसे एक देश का रहस्य' (सन् १९७३), 'पहला सुख निरोगी काया' (सन् १९६३), 'मानव अधिकार' (सन् १९६३), मैं अछूत हूँ (सन् १९६८), 'नागरिकता की ओर' (सन् १९६८), 'बापू की बात' (सन् १९५४) आदि।

इस प्रकार उन के सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने के पश्चात यह कहना सार्थक होगा कि विष्णु प्रभाकर जी बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार हैं। इन्होंने सम्पूर्ण विश्व के शुभ की बात सोची है और अपनी रचनाओं की शोभा बढ़ाई है। उन की लेखनी द्वारा रचित 'आवारा मसीहा' जीवनी साहित्य की अमर रचना है। हिन्दी साहित्य को इन्होंने अपनी भिन्न-भिन्न रचनाओं से समृद्ध बना दिया है। इन्होंने सदैव मानवता को सर्वोपरि माना है। इसी मानवता का प्रचार अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है।

आँगन के पार द्वार : काव्य-साधना

महाराज कृष्ण 'भरत'
एम.ए.
एम.ए. (अनुसंधित्सु)

प्रतिभासम्पन्न कवि, शैलिकार, कथाकार, निबन्धकार, आलोचक, यात्रा-संस्मरण-लेखक, सम्पादक और सफल अध्यापक, 'सच्चिदानन्द हीरा नन्द वात्स्यायनअज्ञेय ने जो लिखा, वह अपने ढंग का अनूठा और विशिष्ट है। वस्तुतः अज्ञेय का काव्य-सृजन 'छायावादी' कविता से आरम्भ हुआ था। वे प्रयोगवाद तथा नई कविता के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। 'तारसप्तक' के प्रकाशन द्वारा उन्होंने केवल नई कविता को जन्म ही नहीं दिया वरन् हिन्दी कविता को नयी संवेदना दी, नये विचार दिये और इससे हर दृष्टि से नया जीवन दिया।

'आँगन के पार द्वार' कविता संग्रह में अज्ञेय द्वारा रचित सन् १९५९ से सन् १९६१ तक की कविताएँ संग्रहित है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ कवि ने विदेश में लिखी। क्योंकि इन दो वर्षों में अज्ञेय ने यूरोप तथ अमेरिका का भ्रमण किया तथा वहाँ पर भारतीय साहित्य को अधिक सहज ग्राह्य बनाने के लिए ज़मीन तैयार की। सन् १९६२ में चीन से लड़ाई छिड़ते ही वे व्याकुल हो उठे और भारत लौट आये। बार-बार, आने-जाने के फलस्वरूप अज्ञेय ने एक नई कृति –'आँगन के पार द्वार', को जन्म दिया। 'आँगन के पार द्वार' संग्रह तीन भागों में विभाजित है–अन्तःसलिला, चक्रान्त शिला और असाध्य-वीणा। प्रस्तुत संग्रह अज्ञेय की काव्य-साधना का सर्वोत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करता है–उनके रहस्यवाद की चरम परिणति है ।

अन्तःसलिला खण्ड में अठारह कविताएँ हैं। इनमें सरस्वती-पुत्र, बनादे चितेरे, भीतर जागा दाता, अन्धकार में दीप, एक प्रश्न तथा अन्तःसलिता आदि कविताएँ मौन में सत्य की अनुभूमि कराती हुई जिजीविषा की अभिव्यक्ति करती है। 'सरस्वती-पुत्र' कविता में कवि सत्य की अनुभूति करना चाहता है तथा

'बना दे चितेरे' नामक कविता में 'उछली-मछली' का उसकी गतियों के साथ चित्रण किया गया है पर उसकी जिजीविषा की तृप्ति नहीं होती –

ऊपर अधर में
हवा का एक बुलबुला-भर पीने को
उछली हुई मछली
जिसकी मरोड़ी हुई देह-वल्ली में
उस की जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है।

'भीतर जगा दाता' में स्मृति के चित्र संजोये गए हैं, 'अन्धकार में दीप' में अंधकार को अज्ञान का प्रतीक माना गया है तथा 'एक प्रश्न' में कवि के मन में निराशा की भावना उत्पन्न हुई है। अन्तःसलिला नामक कविता व्यक्तित्व का एक रूपक है।

'चक्रान्त शिला' में एक तत्व को केन्द्रित करके सत्ताईस कविताएँ लिखी गई है। इन कविताओं में रहस्यानुभूति-प्रधान है। कुछ विद्धानों का कहना है कि 'चक्रान्त शिला' उपशीर्षक के अन्तर्गत जो कविताएँ संकलित हैं वे सब फ्रांस के ईसाई बेनेडिक्टी सम्प्रदाय के 'विएर-क्विवीर' नामक मठ से प्रेरित हैं। पहली कविता में कवि ने विराट सत्ता का चित्रण किया है। दूसरी कविता में वे वन के झरने के साथ बहता है तथा वन के सन्नाटे के साथ मौन भी है–

क्योंकि वही मुझे बतलाता है कि मैं कौन हूँ
जोड़ता है मुझको जो विराट से
जो मौन, अपरिवर्त्त है, अपौरुषेय है
जो सबको समोता है।

एक कविता में कवि वज्र कठोर भी बन जाता है तो किरण उसे अनुराग से दुलरा लेती है। सत्ताईसवीं कविता मात्र तीन पदों या पंक्तियों की है जो मौन में सत्य की अनुभूति प्रकट कराती है।

'असाध्य-वीणा'–इस संग्रह की अन्तिम तथा अज्ञेय की अब तक की सब से लम्बी कविता है जो सर्वव्याप्त सत्य का पतिपादन करती है। इस कविता में एक कहानी पिरोई गई है। एक राजा के पास एक बहुत पुरानी

असाध्य वीणा होती है जिसे प्रियंवद आकर साध लेता है। जब वीणा झनझना उठती है तो प्रियंवद के जड़ीभूत मन में सहसा अपूर्व शान्ति की भावनाएँ जाग्रत हो जाती हैं। उस असाध्य वीणा के स्वरों को सुनकर श्रोतावृन्द की चिर प्रतीक्षित भावनाओं को अपूर्व शान्ति मिलती है–

सहसा वीणा झनझना उठी–
संगीतकार की आँखों में ठण्डी पिघली ज्वाला-सी झलक गयीं–
रोमांच एक बिजली-सा सब से तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयम्भूं
जिस में सोता है अखण्ड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय।

संक्षेप में 'आँगन के पार द्वार' संग्रह का परिचय देने के उपरान्त अब इसकी काव्य-साधना का विवेचन यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है। उक्त संग्रह की काव्य-साधना का विवेचन करने के लिए विवेच्य विषय को स्थूल रूप से चार वर्गों में विभाजित करना उपयुक्त है :–

(१) रहस्यवादी परिणित का काव्य,
(२) प्रकृति-चित्रण का समावेश,
(३) शब्द-समूह,
(४) काव्य-शिल्प।

(१) रहस्यवादी परिणति का काव्य :– आँगन के पार द्वार' संग्रह के तीनों खण्ड़ों में–अन्तःसलिला, चक्रान्तशिला तथा असाध्यवीणा–रहस्यवादी परिणति हो गई है।

"अज्ञेय रहस्यवाद की ओर आये हैं–अनेक दिशाओं से अनुभूति के तेज़ाब में झुलसकर। इसका महत्व यह है कि अज्ञेय की स्थिति सचमुच ही उस 'सरस्वती-पुत्र' की सी हो गई, जिसका वर्णन 'आँगन के पार द्वार' की प्रथम कविता में किया गया है–

बाहर वह
खोया-पाया, मैला-उजला

दिन-दिन होता जाता वयस्क
दिन-दिन धुँधलाती आँखों से
सुस्पष्ट देखता जाता था।''

--अज्ञेय की कविता : एक मूल्यांकन
लेखक चन्द्रकांत महादेव, पृ. ९२

अन्तःसलिला नामक कविता में कविता ने आन्तरिक भावों एवं विचारों की रसवन्ती धारा का चित्रण किया है। कवि ने रेत, उसे खोदने, उसके भीतर की नमी और अन्तर्हित जलधारा के माध्यम से जीवन को हरा-भरा रखने वाली सहज मानवीय अन्तःसलिला का बड़ा ही सजीव, सार्थक चित्रण किया है–

अरे, अन्तःसलिला है रेतः
अनगिनत पैरों तले रौंदी हुई अविराम
फिर भी घाव अपने आप भरती,
पड़ी सज्जाहीन,
धूसर-गौर,
निरीह और उदार।

'चक्रान्त शिला' की सम्पूर्ण कविताओं में रहस्यवाद की प्रौढ़ अभिव्यक्ति मिलती है। पहली ही कविता में उस सर्वव्यापी विराट चेतना का परिचय देते हुए कवि कहता है–

यह महाशून्य का शिविर,
असीम, छा रहा ऊपर,

रूपों में एक अरूप सदा खिलता है,
गोचर में एक, अगोचर, अप्रमेय,
अनुभव में एक अतीन्द्रिय,
पुरुषों के हर वैभव में ओझल
अपौरुषेय मिलता है।

रात के सन्नाटे में कवि कोई रहस्यमय गीत सुनता है, जो उसे जागने पर विवश कर देता है। जब वह झरोखे के बाहर सुनता है, तो उसे ज्ञात होता है

कि यह ईश्वर गा रहा है–

मैंने उठकर खोल दिया वातायन–
और दुबारा चौंका:
वह सन्नाटा नहीं–
झरोखे के बाहर
ईश्वर गाता था।
इसी बीच फिर
बाढ़ उषा की आयी।

धुन्ध से ढँकी हुई कविता रहस्यवादी कविता है। कवि अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हुए कहते हैं–

धुन्ध से ढँकी हुई
कितनी गहरी वापिका तुम्हारी
कितनी लघु अंजली हमारी।

उस विराट सत्ता का परिचय देते हुए कवि कहता है कि वह सत्ता अपनी वाणी से कुछ न कहें पर उसे आस्था है कि उसके बारे में वह सुन ही लेगा। आत्मा को अकेली तथा अविनाशी बताते हुए कवि कहता है–

अरी ओ आत्मा री,
कन्या भोली कँवारी
महाशून्य के साथ भाँवरें तेरी रत्ती गयीं।
परम तत्व के सुन्दर रूप का भी चित्रण किया गया है।

उस शून्य में प्रज्जवलित ज्योति तक पहुँचने के लिए अन्धकार अर्थात् अज्ञान को मिटाना होगा। इस तत्व को केन्द्रित करके एक कविता लिखी गई है। एक कविता में कवि बूढ़े से मोती माँगता है। इसके उत्तर में बूढ़ा उसे पानी में कूदने को कहता है। इस में रहस्यवाद की पूर्ण छटा है। जापानी रहस्यवाद का कवि पर प्रभाव पड़ा है। उस रहस्यवाद में कवि को बुद्ध मिल गये हैं और कवि की सारी रहस्यवादी रचनाएँ उस बुद्ध तक सीमित हो गई है। कवि कह उठता है–

ओ मूर्ति।
वासनाओं के विलय
अदम आकांक्षा के विश्राम।

आँगन के पार द्वार कविता में कवि की अनुमति और गहन हो उठी है और सत्य ने एक साकार रूप धारण कर लिया है। साधक ईश्वर का भेद छूट गया। उक्त छब्बीसवीं कविता इस प्रकार है–

आँगन के पार
द्वार खुले
द्वार के पार आँगन
भवन के ओर-छोर
सभी मिले–
उन्हीं में कहीं खो गया भवन।

"असाध्यवीणा" में राजा-रानी से लेकर सृष्टि के जड़-चेतन सभी तत्वों तक केशकम्बली की बीणा के स्वरों की गूँज व्यापत करने के लिए प्राणियों और वस्तुओं के विवरण दुहराता चलता है।"

–'हिन्दी शीराजा', पूर्णांक–८८, पृ. ४२।

'असाध्य-वीणा' कविता के प्रारम्भ में प्रियंवद को सम्मान देते हुए राजा की भावनाएं व्यक्त की गई है। प्रियवंद, केशकम्बली, गुफागेह यह साधक के तीनों नामक उसके चरित्रिक विशेषताओं के प्रतीक है। इस वीणा की पूर्वपीठिका बताते हुए कवि कहता है कि वज्रकीर्ति नामक किसी साधक ने पुराने किरीटी पेड़ से इसे बनवाया था। प्रियवंद वीणा के तारों पर अपनी उंगुलियाँ चलाने से पहले अपने को सम्बोधित करते हुए कहता है–

तू गा, तू गा–
तू सन्निधिपा, तू खो
तू आ–तू हो–तू गा

प्रियंवद सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति अपने को समर्पित करने के उपरान्त वीणा को बजाते हैं। उस संगीत को सुनकर प्रत्येक को अपनी इयत्ता का बोध होता है।

(२) प्रकृति चित्रण का समावेश :– 'आँगन के पार द्वार' संग्रह में प्रकृतिचित्रण का समावेश विशेषकर आठ रूपों में पाया जाता है जो इस प्रकार से है–आलंबन, उद्दीपन, आलंकारिक, पृष्ठभूमि, रहस्यात्मक रूप में, प्रतीकात्मक रूप में, बिम्ब-प्रतिबिम्बरूप में तथा मानवीकरण-रूप में ।

आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण 'भीतर जागा दाता' 'चिड़िया ने कहा' आदि कविताओं में किया गया है। उद्दीपन रूप में यह चित्रण 'एक उदास साँझ' में चित्रित किया गया है–

सूने गलियारों की उदासी।
गोखों की पीली मंद उजास
स्वयं मूर्च्छा-सी
थकी हारी साँसे, बासी।

आलंकारिक रूप में काव्य में प्रकृतिका सौन्दर्य अभिव्यक्त करने के लिए अनेक साधन हैं और उनमें अलंकारों का विशेष स्थान है। उपमान-उपमेय का सामंजस्य बैठाने के लिए प्रकृति का आश्रय लेना पड़ता है। पहचान कविता में इसका एक उदाहरण देखिए– ·

तुम
वही थी:
किन्तु ढलती धूप का कुछ खेल था।

'झील का किनारा' नामक कविता में पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति चित्रण किया गया है जो इस प्रकार से है–

झील का किनारा
और वह सहसा छाये सन्नाटे का
एक क्षण हमारा।

चक्रान्त शिला की एक कविता यहाँ पर उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा रही है जिसमें रहस्यात्मकरूप में प्रकृति को चित्रित किया गया है। कवि रात के सन्नाटे में दुर्निवार गीत सुनता है–

मैंने उठकर खोल दिया वातायन–
और दुबारा चौंका

ईश्वर गाता था।

प्रतीकात्मक रूप में तथा बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में प्रकृति-चित्रण का समावेश 'बना दे चितेरे' नामक कविता में देखा जा सकता है। मानवीकरण के रूप में यह चित्रण 'परायी राहें' नामक कविता में दृष्टिगोचर होता है–

दूर सागर पार
पराये देश की अनजान राहें
पर शीलवान् तरुओं की
गुरु उदार,
पहचानी हुई छाहें।

(३) शब्द-समूह :– शब्द-समूह में चार प्रकार के शब्द आते हैं– तत्सम, तद्‌भव देशज तथा विदेशी। 'आँगन के पार द्वार' संग्रह में इन चारों का रूप देखने को मिलता है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग उक्त संग्रह में अधिकांश स्थानों पर किया गया है। कुछ शब्द इस प्रकार से हैं– अर्थहीन जल्पक, जिजीविषा, उदीषा, सलिला तथा गिरी-प्रान्तर आदि। तद्‌भव शब्दों का भी प्रयोग सामान्य रूप में कविताओं में हुआ है। बड़बोले, फीकी आदि व्यंजक तथा कोमल शब्दों का विन्यास भी है।

देशज अर्थात् स्थानीय शब्दों का भी सर्वथा अभाव नहीं है। धुले-पूंछे उझ, धरधराती, बहिया, छप-छड़ाप, अररा कर, तथा कर्री आदि अनेक आँचलिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। विदेशी शब्दों का प्रयोग अधिक नहीं हुआ है।

(४) काव्य-शिल्प :– 'आँगन के पार द्वार' संग्रह में भाषा का स्वरूप बड़ा ही मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। उपमान-विधान, प्रतीक-विधान, बिम्ब-विधान तथा छन्द-विधान का प्रयोग इस संग्रह में विशेष रूप से हुआ है।

उक्त संग्रह में कवि ने नये उपमानों का प्रयोग किया है। ढलती आयु के लिए कवि ने ढलती धूप उपमान का प्रयोग किया है। अज्ञेय ने प्रतीकों की ओर

विशेष ध्यान दिया है। 'अन्तरंग चेहरा' नामक कविता में उक्त प्रतीक देखिए–

वातायन
संसृति से मेरे राग-बन्ध के
लोचन दो–
सम्पृक्तिनिविड़की

मछली को जीवात्मा का प्रतीक बताते हुए उसका चित्रण 'बनादे चितेरे' नामक कविता में किया गया है। आकाश और जल की नीलमाओं के बीच सत्यान्वेषण की प्रतीक यह मछली है।

"अज्ञेय के बिम्ब-विधान की विशेषता यह है कि जिस प्रकार चित्रकार भिन्न-भिन्न रंगों द्वारा दृश्यों का कुशलतापूर्वक चित्रण करता जाता है उसी प्रकार कवि भी एक दृश्य को उभारने के लिए किन्हीं विशेष उपकरणों का आश्रय न लेकर अनेक उपकरणों के माध्यम से दृश्यावली प्रस्तुत करता हुआ चला जाता है।"

–आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि : अज्ञेय
लेखक, प्रो. राजेश शर्मा, पृ. : ५२१

इसी प्रकार अन्य बिम्ब उमड़ते सागर का है।

मतिमाया
सागर लहराया

xxx

किरण-अप्सराएँ भारहीन पैरों के थिरकीं–
जल पर आलते की छाप छोड़ पल-पल बदलती।

'पहचान' नामक कविता में मुक्त छन्द का एक प्रत्यक्ष उदाहरण इस प्रकार से है–

तुम
वही थीं·

किन्तु ढलती धूप का कुछ खेल था–
ढलती उमर के दाग उसने धो दिये थे।

अज्ञेय ने मुक्त छन्द को संगीत तथा लय से भी मुक्त किया। अज्ञेय के काव्य-शिल्प के विभन्न उपकरणों के अतिरिक्त उक्त काव्य संग्रह में विभिन्न अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है। कुछ अलंकारों के नाम इस प्रकार है– अनुप्रास, वीप्सा, अन्योक्ति, रूपक, अन्तयानुप्रास, वृत्यानुप्रास तथा विरोधाभास आदि।

'आँगन के पार द्वार' संग्रह तक आते-आते अज्ञेय का काव्य निखार और गहराई के ऐसे उत्कर्ष पर पहुंचा, जिसमें भारतीय-परम्परा की विश्व से संयोजन की क्षमता हो उठी है। इस दृष्टि से वह संग्रह हिन्दी काव्य की अद्वितीय उपलब्धि है। इसने यह सिद्ध कर दिया कि अज्ञेय प्रश्न छोड़ने में ही नहीं उत्तर पाने में भी कुशल है। संक्षेप में 'आँगन के पार द्वार' नयी कविता की ही नहीं, आधुनिक हिन्दी कविता की अत्यन्त प्रांजल और प्रौढ़ उपलब्धि है।

आधुनिक हिन्दी रंगमंच में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल का स्थान

—कुमार जी सूरी (अनुसंधित्सु)

आज़ादी के बाद रंगमंच सम्बन्धी जो नया आन्दोलन ज़ोर-शोर के साथ उभरा—उससे जुड़ कर जो नाटककार रंग-गगन में उदित हुए, उनमें डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल का विशिष्ट स्थान है। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के नाट्य लेखन का आरम्भ प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्र जीवन से हुआ है। विश्वविद्यालय एवं कालेजों के शौकिया रंगमंच पर उन दिनों डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकियों की धूम मची हुई थी। इसी रंगमंच को ध्यान में रखकर डॉ. लाल ने दो एकांकियों की रचना की "ताजमहल के आँसू" और "पर्वत के पीछे"। दोनों ही एकांकी अभिनीत भी हुए। धीरे-धीरे डॉ. लाल पूर्णाकार नाटकों की ओर बढ़े और रंगमंच सम्बन्धित गति विधियों को तीव्र करने के उददेश्य से प्रयाग में 'नाट्य-केन्द्र' नामक नाट्य संस्था की स्थापना की। इसकी स्थापना के उददेश्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ. माहेश्वर ने अपने शोध-प्रबन्ध में लिखा है—भारत भर में हिन्दी रंगमंच से सम्बन्धित यह अपने ढंग की अकेली संस्था है। जनवरी सन् १९५८ ई. स्थाई एवं सुव्यवस्थित रंगमंच के निर्माण के लिए सर्वथा अव्यावसायिक तथा अराजनीतिक स्तर पर इसकी स्थापना हुई। इसकी विशेषता यह है कि वर्ष में कतिपय नाटकों के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ नाट्य-कला की शिक्षा भी यहाँ दी जाती है। 'नाट्य-केन्द्र' में (क) नाट्य-पाठ, संवाद एवं वाक् प्रशिक्षण (ख) अभिनय, गीत और मुद्राएँ (ग) मंच सज्जा (घ) प्रकाश तथा (ड.) रूप विन्यास का प्रशिक्षण होता है। इस संस्था ने पिछले कई वर्षों में डॉ. लाल द्वारा लिखित "सुन्दर रस" "रात-रानी" "मादा कैक्टस" आदि नाटकों को प्रस्तुत करके उच्च श्रेणी के अभिनय तथा रंगमंच कला का प्रदर्शन किया है।"

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने एक महत्वाकांक्षी स्वप्न देखा था। वे चाहते थे कि 'नाट्य-केन्द्र' के पास आधुनिक रंगमंच के सभी उपकरण उपलब्ध हों। उसकी शाखाएं देशभर में खुल जाएँ और नाटक की महत्ता स्थापित करने वाली यह संस्था देश भर में विख्यात हो जाए। कोई स्वप्न अपनी सम्पूर्णता में कभी पूरा नहीं होता किन्तु सीमित साधनों के बल पर डॉ. लाल ने प्रयाग में जो कर दिखाया, वह अभूत पूर्व था। डॉ. लाल की लगन तथा रंगमंच के प्रति उनकी आस्था हिन्दी नाटक के विकास के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जायेगी।

अमरीका के प्रथम श्रेष्ठ नाटककार यूजोन (   ) के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने नाट्य-कला को रंगमंच से ही सीखा-ठीक उसी तरह जैसे शेक्सपियर ने। इसी प्रकार प्रयाग के 'नाट्य-केन्द्र' में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने विभिन्न प्रयोग किये, परिणामस्वरूप नवीन अनुभव प्राप्त करने का सुनहरा अवसर उन्हें मिला। इस 'नाट्य-केन्द्र' के द्वारा डॉ. लाल को आत्मशोध एवं आत्म-साक्षात्कार के अमूल्य सुअवसर प्राप्त हुए। इस संस्था से प्राप्त अनुभवों ने उन्हें नये-नये प्रयोग करने की प्रेरणा दी। इस नाट्य-संस्था के माध्यम से उन्हें मंच और दर्शक मिले जिन्हें केन्द्र में रखकर डॉ. लाल अपने नाटकों की रचना कर सके, प्रदर्शन के बाद नाटक की संरचना में परिवर्तन कर उसे पूर्णता की दिशा की ओर ले जा सके। उन्होंने अपनी रंगानुभूतियों की परिपक्वता प्रदान करने के लिए कोई कसर नहीं उठा रखी है। सन् १९६४ ई. में अन्तर्राष्ट्रीय 'नाट्य-संगोष्ठी' में भाग लेने के लिए उन्हें 'नुखरिस्ट' तथा 'ऐथन्स' की यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस विदेश यात्रा ने निश्चित रूप से उनके नाट्य-क्षितिज को व्यापकता प्रदान की।

सन् १९६८ ई. में डॉ. लाल को इलाहाबाद छोड़कर दिल्ली आना पड़ा। दिल्ली विश्वविद्यालय में रंगमंच और नाटक का अध्यापन करते हुए उनको नाटक के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही पक्षों पर गम्भीरता–पूर्वक चिन्तन मनन करने का मौका मिला। 'सूर्यमुख' 'मिस्टर अभिमन्यु' 'कलंकी' आदि नाटक इन्हीं दिनों की देन है। 'नाट्य-केन्द्र' का संचालक रूप यहाँ आकर भी निष्क्रिय न रह सका और उन्होंने 'संवाद' नामक नाट्य-संस्था की स्थापना की। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से उत्तीर्ण कई स्नातकों ने इस 'संस्था' के जरिए अपनी प्रतिभा का परिचय दिया–इसमें से कुछ आगे चलकर प्रसिद्ध भी हुए यथा–ओमशिवपुरी, सुधा शिवपुरी, महोर महीर्ष और रामगोपाल बजाज।

दिल्ली में ही डॉ. लाल राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और श्री अल्काजी के सम्पर्क में आए। विद्यालय में प्रशिक्षणार्थियों द्वारा उनके नाटक अभिनीत हुए और फिर उनका प्रकाशन हुआ। इस प्रकार निरन्तर रंगमंच के सम्पर्क में रहकर नाट्य लेखन का कार्य करने वाले डॉ. लाल एकमात्र हिन्दी नाटककार हैं। रंगमंच से इतना गहन सम्बन्ध मोहन राकेश का भी न रहा होगा। इसीलिए डॉ. लाल के नाटकों में विषय और शिल्प की इतनी विविधता है। इसके विपरीत मोहन राकेश की नाट्यानुभूति सीमित रही है। इस सम्बन्ध में डॉ. इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं कि राकेश की नाट्य कृत्तियों की मूल संवेदना एक तरह की होने के कारण इस परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि इन्होंने एक ही नाटक लिखा है जो आधे-अधूरे हैं.।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल को 'नाट्य-केन्द्र' एवं दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापक के उत्तरदायित्वों के कारण नाट्य लेखक एवं नाट्यालोचक की दूहरी भूमिकाएं अदा करनी पड़ी हैं। इसीलिए उन्होंने अपने नाटकों में काव्यत्व एवं दृश्यत्व का सन्तुलन बनाए रखने का अथक प्रयास किया है। एक प्रश्नकर्त्ता के यह पूछने पर कि पिछले कई वर्षों से अपने अभिनय और निर्देशन के क्षेत्र में स्वयं को काट क्यों लिया है। डॉ. लाल ने इस सम्बन्ध में कहा "वहां से जितना मुझे चाहिए था, मैंने ले लिया है। अब उन हथियारों से लैस होकर मुझे अपने ही मोर्चे पर लड़ना है। बिना रंगमंच का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किए सार्थक नाट्य-लेखन असम्भव है.।"

डॉ. लाल ने एक लम्बी रंग-यात्रा के बाद अपने रंगमंच का अन्वेषण कर उसे उपलब्ध किया है। इस अर्थ में वे नाट्य महर्षि हैं। रंगमंच के प्रति अपने सम्पूर्ण समर्पण को डॉ. लाल ने नाटक 'करफ्यू' के निम्नलिखित संवादों में अभिव्यक्त किया है:–

कविता : अच्छा एक बात बताइए। आपके लिए नाटक ही सब कुछ है ?

संजय : अब शायद वही सब कुछ है। पन्द्रह वर्ष-जीवन के पन्द्रह वर्ष मैंने इसी में लगा दिए। कुछ मिलता है या नहीं, यह तो सोचे समझे बिना मैं लगा रहा, चिपका रहा हूँ नाटक की इस दुनिया से। मैंने इसी दुनिया को देखा है, जीवन को जाना है, मृत्यु को समझा है। इससें हट कर जीवन की कल्पना मैंने की ही नहीं।

डॉ. लाल की रंग-साधना निष्फल नहीं हुई है– उनके दो दर्जन से अधिक नाटक इसका ज्वलंत प्रमाण हैं। किसी की साहित्य-साधना से लाभान्वित होते हुए भी उसे कितना जानते हैं, यह हमें अपने आप से पूछना होगा। जिस दिन हिन्दी भाषी अपने रंगमंच के प्रति सम्पूर्ण श्रद्धा भाव एव गौरव का अनुभव करेंगे उस दिन निश्चित रूप से डॉ. लाल की रंग-यात्रा का महत्व उन्हें ज्ञात होगा। यद्यपि वे अब हमारे बीच नहीं रहे फिर भी हिन्दी नाटक और रंगमंच में एक विशिष्ट व्यक्तितत्व के रूप में याद किए जायेंगे।

हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय,
यथार्थ के दर्पण में
(जून 1987 से जून 1989 तक)

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के मूर्द्धन्य आचार्य प्रवर प्रो॰ डा॰ नामवर सिंह, हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय में विस्तार-भाषण (*Extension Lecture*) देते हुए। (*अक्तूबर, 1987*)
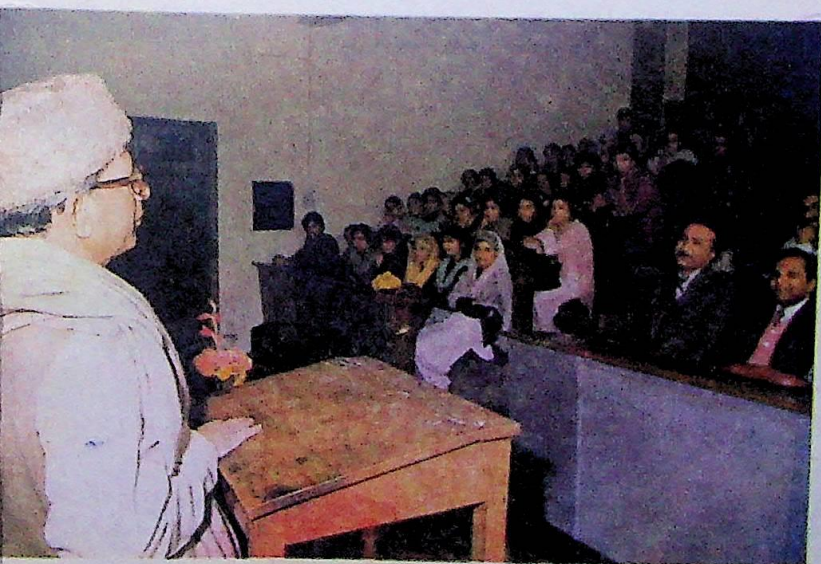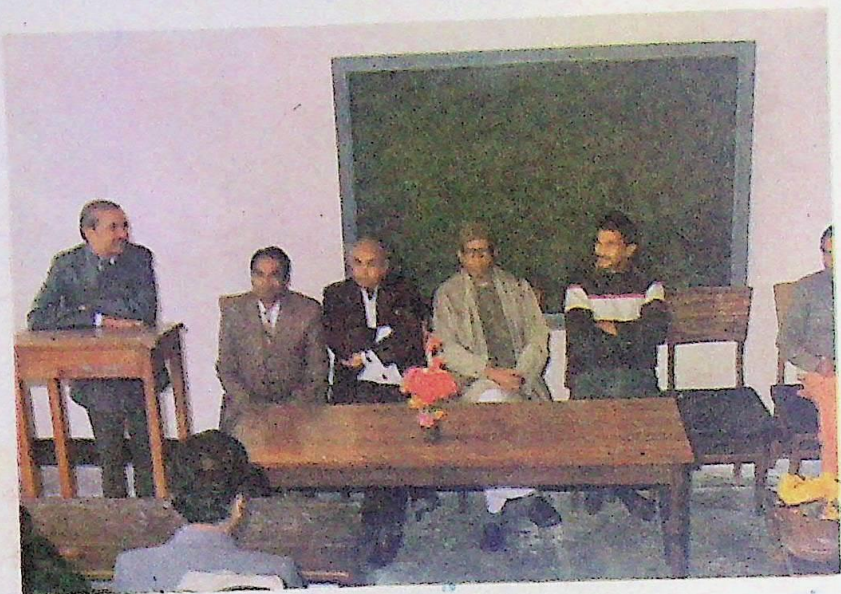
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं आचार्य प्रो॰ डॉ॰ नज़ीर मुहम्मद भाषण देते हुए।
(अक्तूबर, 1987)
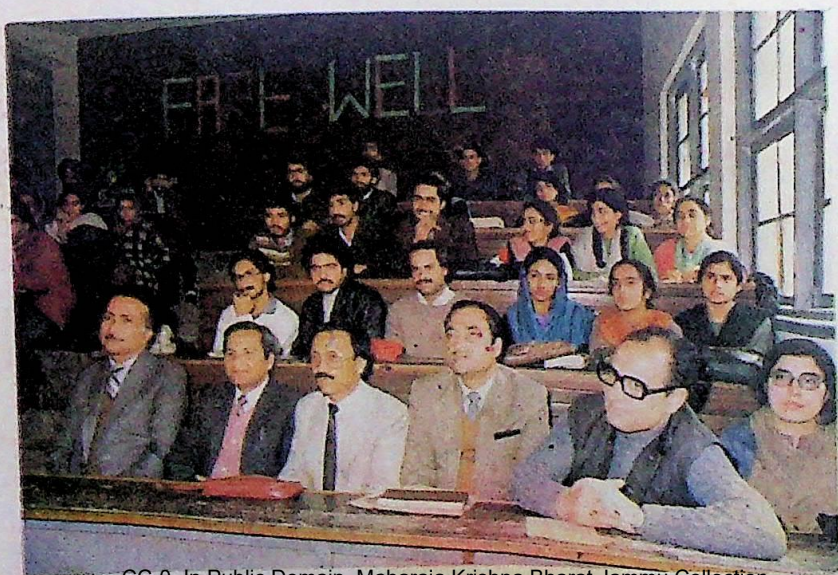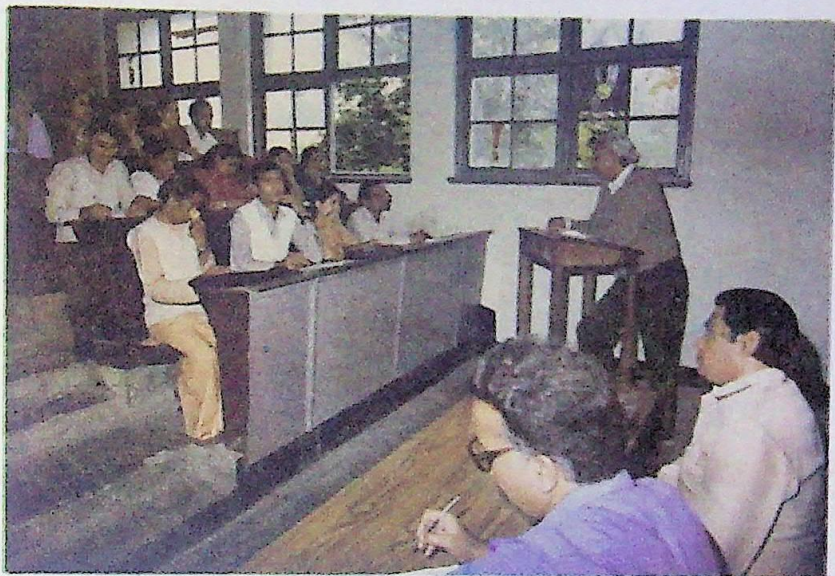
गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर के सुप्रसिद्ध विद्वान तथा आचार्य प्रो॰ डा॰ रमेशकुन्तल मेघ विस्तार-भाषण (*Extension Lecture*) देते हुए।
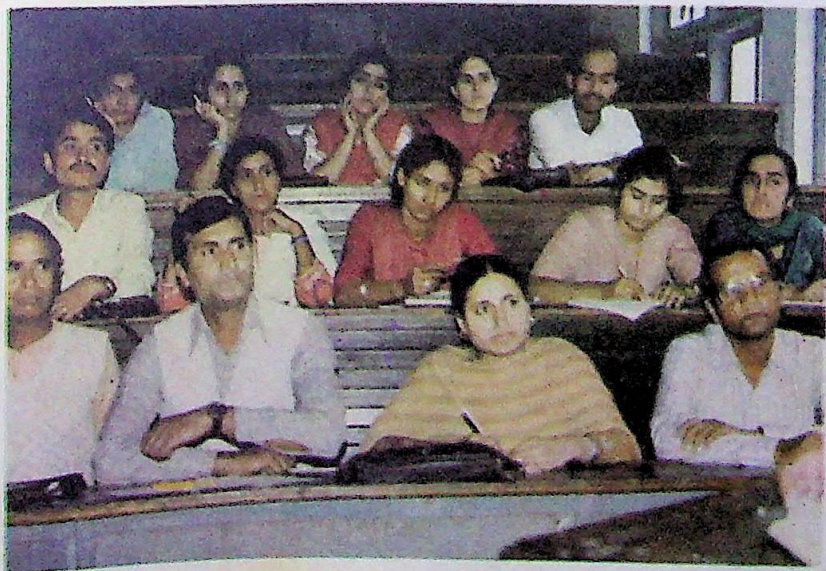
हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ॰ रमेशकुमार शर्मा को भावभीनि विदाई देते हुए हिन्दी के विभागाध्यक्ष प्रो॰ मुहम्मद अयूब खान। मंच पर मुख्य अतिथि कुलपति प्रो॰ मुशीर-उल-हक़। (7 जुलाई, 1987)
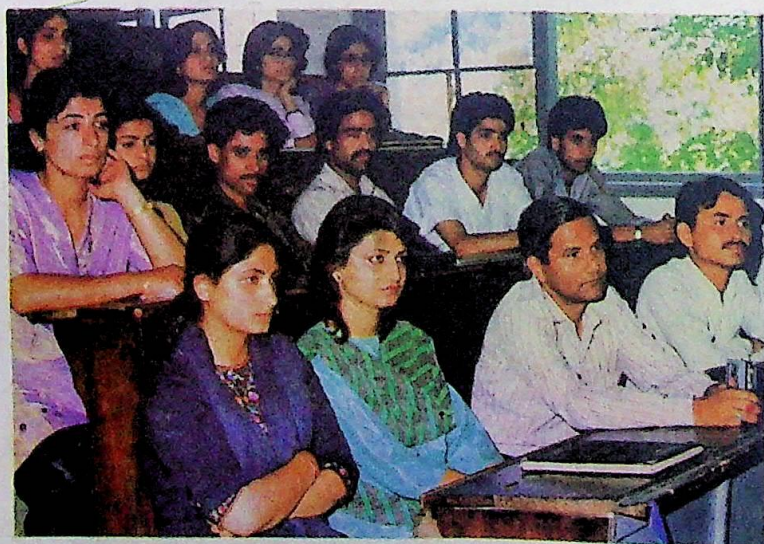
कश्मीर विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रो॰ मुशीर-उल-हक़, हिन्दी दिवस के दिन डॉ॰ मुहम्मद अयूब खान द्वारा लिखित पुस्तकें 'दर्शन : चिन्तन — अनुचिंतन' तथा "हिन्दी का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन एवं भाषा — विज्ञान के नव्य रूप"। और डॉ॰ खान तथा सोमनाथ कौल द्वारा लिखित पुस्तक "जम्मू-कश्मीर की प्रतिनिधि कहानियाँ" का विमोचन करते हुए। *(14 सितम्बर, 1987)*
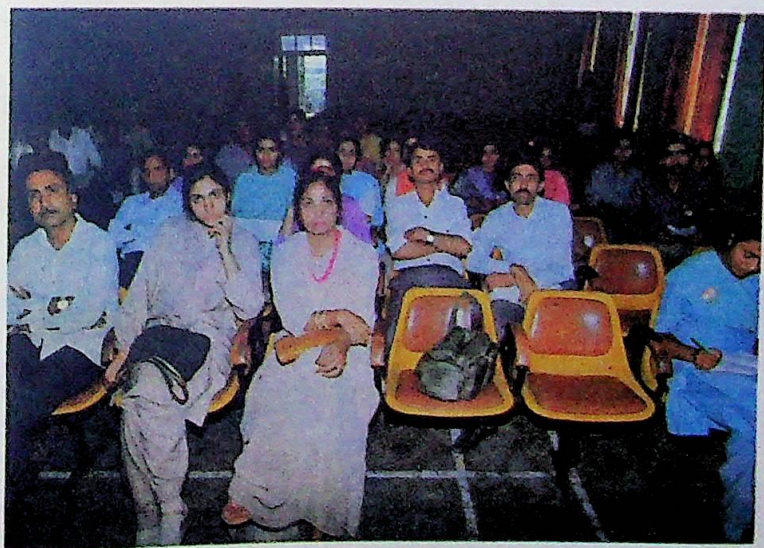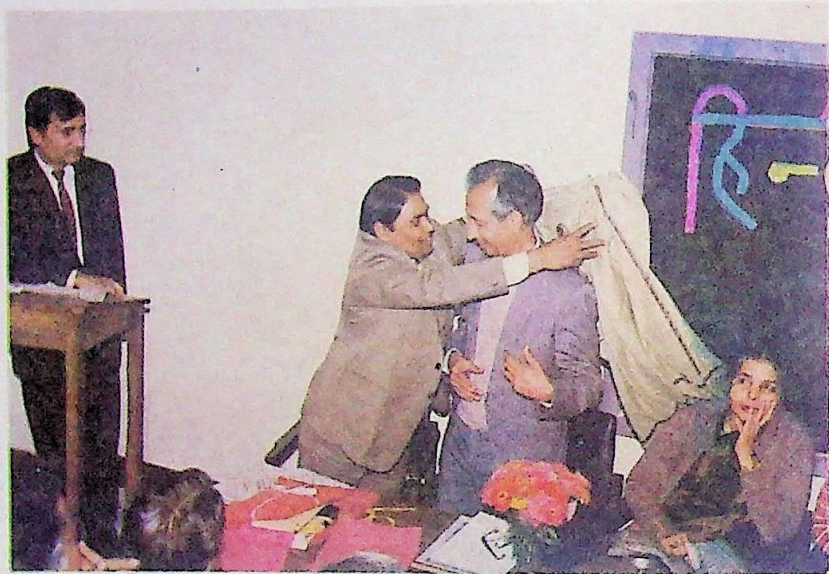
कश्मीर विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रो॰ मुशीर-उल-हक़ को अरबी साहित्य में विशेष योगदान के उपलक्ष्य में हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित एक सम्मान समारोह में शॉल भेंट करते हुए विभागाध्यक्ष डॉ॰ मुहम्मद अयूब खान।
(4 अक्तूबर, 1988)
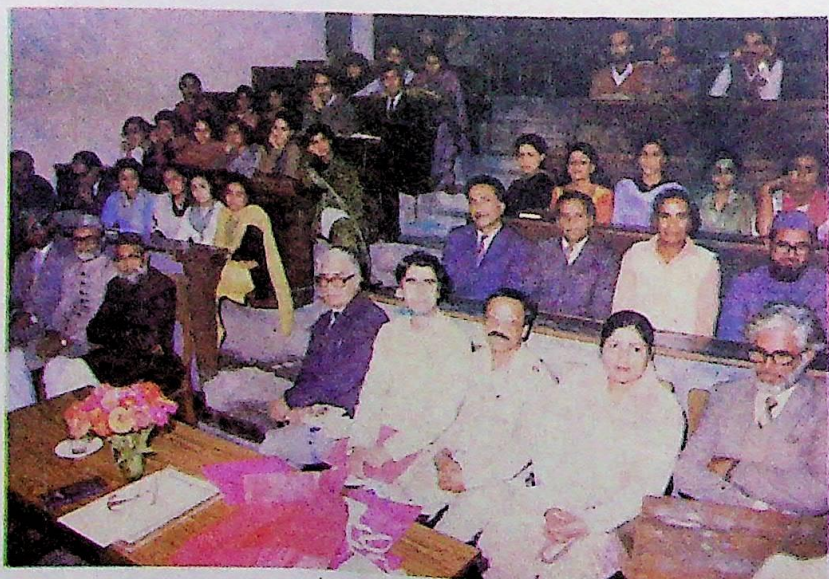
कश्मीर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो॰ मुशीर-उल-हक़ 'हिन्दी दिवस' (1988) पर डॉ॰ मुहम्मद अयूब खान तथा डॉ॰ सोमनाथ कौल द्वारा लिखित पुस्तक 'आंचलिका' का विमोचन करते हुए।
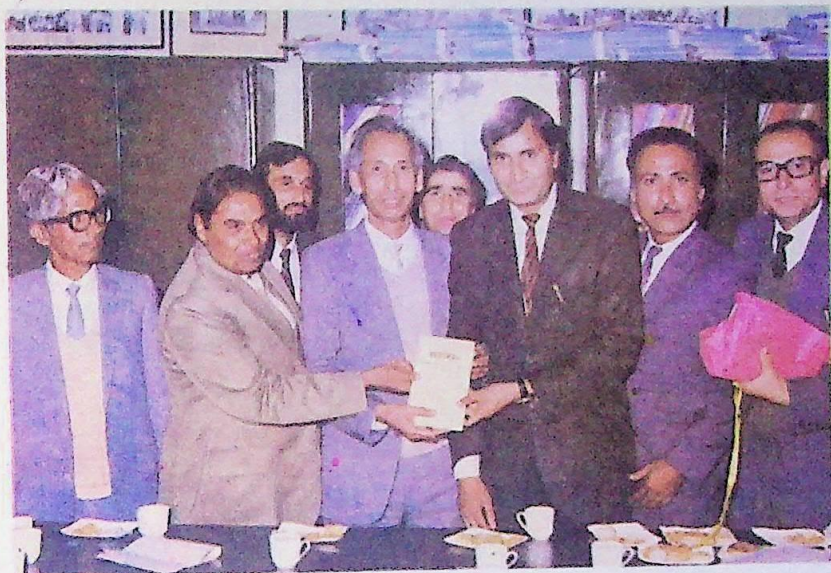
कश्मीर विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रो॰ हक़, 'हिन्दी दिवस' (1988) के अवसर पर प्रो॰ डॉ॰ रोशनलाल ऐमा की पुस्तक "द्विवेदीयुगीन काव्य का पुर्नमूल्यांकन" का विमोचन करते हुए।
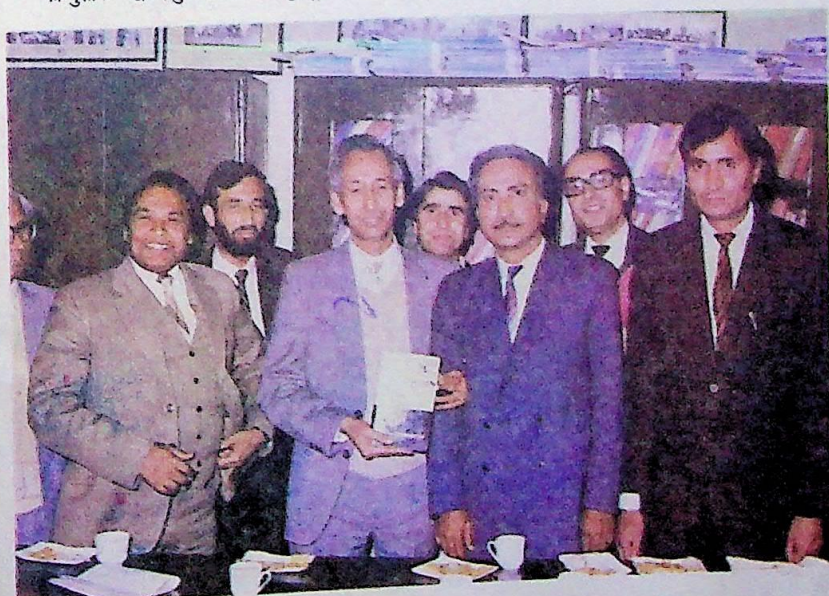
सुप्रसिद्ध महिला उपन्यासकार तथा साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित सुश्री कृष्णा सोबती विभाग में अपनी रचना — प्रक्रिया पर भाषण देते हुए। (5 जुलाई, 1988)